विषय सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	महादेवी वर्मा की विरहानुभूति	2
2.	महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएँ	11
3.	महादेवी वर्मा की रहस्य भावना	21
4.	महादेवी वर्मा की काव्य कला	34
5.	छायावादी काव्यधारा में निराला का स्थान	56
6.	निराला का प्रकृति चित्रण	67
7.	निराला की दार्शनिकता	76
8.	निराला की काव्य कला	83
9.	छायावादी काव्य में पंत का स्थान	94
10.	सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति–चित्रण	106
11.	सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता	120
12.	सुमित्रानंदन पंत का काव्य शिल्प	131

.....

महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

1.3.1 प्रियतम के प्रति आकुलतापूर्ण विरह निवेदन

1.3.2 संसार तथा जीवन की नश्वरता

1.3.3 करुणा भाव

1.3.4 दुखवाद

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्द

1.6 अभ्यासार्थ शब्द

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्यः प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

(1) महादेवी वर्मा की विरह वेदना के कारक तत्वों से परिचित होंगे।

(2) महादेवी की विरहानुभूति के स्वरूप से अवगत होंगे।

(3) महादेवी के विरहानुभूति की आधार भूमि से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना

वेदना जीवन का अनिवार्य भाव है, इसीलिए आदिकाल से ही वेदना और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। वेदना काव्य को स्पन्दन देती आई है। महादेवी वर्मा की वेदना हिन्दी–साहित्य की सर्वोत्कृष्ट निधि है, इनकी विरह वेदना के कारक तत्वों के विषय में हिन्दी आलोचक एक मत नहीं हैं। शचीरानी गुटूँ ने इनके असफल वैवाहिक जीवन को इनकी वेदना का मूल कारण स्वीकारते हुए लिखा है– ''यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन –गगन के रकृाभ–पट पर स्नेह–ज्योत्स्ना छिटकी पड रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ –सी अंकित कर गई। आत्म संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत–कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठी।

डॉ॰ नगेन्द्र इस संदर्भ में लिखते हैं –सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और माँस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो वांछित शक्ति का संचय न कर पाई, दूसरे एकान्त अन्तर्मुखी हो गई। इन उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि महादेवी की विरह वेदना का मूल कारण तो भौतिक ही है जो उदात्त बन कर रहस्यवादी या आलौकिक बन गया है। महादेवी वर्मा का विषय में कहना है – 'सुख–दुख की धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख गिनते रहना क्यों प्रिय है, यह बहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। ....जीवन में मुझे बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया न पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'

1.3 महादेवी वर्मा की विरहानुभूति–

महादेवी वर्मा की कविता का संसार विस्तृत नहीं है। न ही उसमें विविधता है परन्तु एक निश्चित उद्देश्य, एक निश्चित स्वप्न लेकर ये कविताएँ लिखी गई हैं। जीवन को अधिक समृद्ध, अधिक सार्थक तथा उपयोगी बनाने की कामना ये वह बार–बार जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार उनकी कविता जीवन के निकट है अतः उन्हें दुख के दोनों रूप प्रिय हैं–

'एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और

दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन के क्रन्दन को स्वीकारता है।' डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान ने इसको भारतीय समाज में परतन्त्र नारी के क्रन्दन का भी प्रतीक माना है। महादेवी वर्मा की विरहानुभूति को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है–

1.3.1 प्रियतम के प्रति आकुलतापूर्ण विरह–निवेदन

हिन्दी आलोचकों का महादेवी पर यह आक्षेप है कि इनका प्रियतम काल्पनिक है, अतः इनकी विरह–वेदना भी अवास्तविक और काल्पनिक है। स्वयं कवयित्री इस आक्षेप का खण्डन करते हुए कहती हैं–

जो न प्रिय पहचान पाती?

दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत से तरल बन?

क्यों अचेतन रोम पाते चिर–व्ययामय सजग जीवन?

किसलिए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती?

जो न प्रिय पहचान पाती?

इससे स्पष्ट है कि कवयित्री का प्रियतम उसके लिए जाना–पहचाना है, जिसके विरह में वह रात–दिन दीपक की भाँति जलती रहती है। उसने प्रकृति के कण–कण से अपने प्रियतम का आभास पाया है, संसार के प्रत्येक प्रकाश में उसकी ज्योति देखी है। पर फिर भी वह प्रियतम उसकी विरह–वेदना को मिटा नहीं सकता है, बल्कि उसने तो निरन्तर उसकी वेदना को बढ़ाया ही है–

जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले,

माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।

अत्यधिक विरह ने कवयित्री के मन में दृढ़ता का अभाव में वह चुनौती सी देती हुई कह उठती है–

चिता क्या है हे निर्मम! बुझ जाये दीपक मेरा,

हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा।''

विरह को सहते–सहते कवयित्री का पीड़ा से इतना लगाव हो जाता है कि वह पीड़ा को ही प्रियतम मिलन का साधन मान बैठी है–

'पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।

यही पीड़ा अन्त में कवयित्री को वह शक्ति प्रदान करती है कि वह अपने प्रियतम से तादाकार हो जाती है, ठीक उसी तरह जिस तरह चित्र और रेखा का, मधुर राग और स्वरों का अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है और प्रेयसी तथा प्रियतम की द्वैतता केवल भ्रमात्मक रह जाती है–

''चित्रित तू मैं हूँ रेखा–क्रम,

मधुर राग तू में स्वर–संगम

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय?'

इस प्रकार महादेवी वर्मा का विरह केवल दुख का भाव नहीं है, वरन् यह एक प्रकार की साधना है जो परम प्रियतम से मिलन में सहायक सिद्ध होती है।

1.3.2 संसार तथा जीवन की नश्वरताः–

संसार तथाा जीवन नश्वरता भी महादेवी वर्मा की विरह–वेदना को बढावा देती है। वह संसार की क्षण भंगुरता को देखकर अत्यन्त दुखी हो उठती हैं–

''देकर सौरभ–दान पवन से कहते जब मुरझाये फूल,

जिसके पथ में बिछे वही क्यों भरता इन आँखों में धूल?

अब इसमें क्या सार मधुर जब गाती भौरों की गुंजार,

मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार।

इस निष्ठुर संसार में रहने वाला व्यक्ति केवल अपने ही सुख–दुख में लीन रहता है। किसी दूसरे के दुख में करूणा से विगलित होने का उसके पास समय ही नहीं है। तभी तो महादेवी वर्मा कहती हैं–

''जब न तेरी ही दशा पर दुख हुआ संसार को,

कौन रोयेगा सुमन हमसे मनुज निःसार को।

जीवन–जगत की क्षण भंगुरता को उन्हों ने एक शाश्वत सत्य के रूप में व्यक्त किया है–

सखे यह माया का संसार, क्षणिक है तेरा मेरा संग,

यहाँ रहता काँटो में बन्धु, सुमन का यह चटकीला रंग।

इसी संदर्भ में उन्होंने 'उत्सर्ग' अथवा 'बलिदान' की भावना व्यक्त की है–

स्निग्ध अपना जीवन कर झार

दीप करता आलोक प्रसार,

गला कर मृत पिंडों में प्राण,

बीज करता असंख्य निर्माण,

सृष्टि का है यह अमिट विधान,

एक मिटने में सौ वरदान।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन पर जीवन–जगत की क्षणिकता और 'उत्सर्ग' से 'निर्माण' की दिशा में उन पर आस्तिक –दर्शनों के शाश्वत सत्य का प्रभाव अधिक है।

1.3.3 करुणा भावः–

करुणा महादेवी वर्मा की विरहानुभूति का आधार है। यह करूणा बौद्धों की महाकरूणा है जिसमें दूसरों के दुखों से द्रवीभूत होने की क्षमता है। इसी करूणा के चलते कवयित्री अपने सम्पूर्ण जीवन को दूसरों के दुख दूर करने के लिए बलिदान करने के लिए कटिबद्ध है। उसकी साध यही है कि या तो 'मैं नीर भरी दुख की बदली' बनकर संतप्त जगत् पर बरसकर उसे शान्ति प्रदान करूँ या 'अचंचल दीप की भाँति निरन्तर जलकर' पथ–भ्रष्ट पथिकों का पथ–प्रदर्शन करूँ। वह एक मात्र वरदान चाहती हैं कि दूसरों के सुख के लिए स्वयं को निरन्तर मिटाती रहूँ–

नित घिरूँ झर–झर मिटूँ प्रिय।

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय।

बादल एवं दीपक के प्रतीक इनकी अजस्र करूणा के परिचायक हैं। करूणा में आकंठ निमग्न होने के कारण दुख और पीड़ा से इनका सहज लगाव हो गया है। दुःख इनका प्रिय सहचर बन गया है जिससे पृथक होना उन्हें अभीष्ट नहीं। वह तो अपना समर्पण भी उसी व्यक्ति को करना चाहती है जिसने इनकी भाँति दुख से मित्रता कर ली हो–

'प्रिय जिसने दुख पाला हो।

वर दो यह मेरा आँसू उसके उर की माला हो।

इस प्रकार कवयित्री अपनी संकीर्ण परिधि से निकल कर जीवन और जगत़ की उस व्यापक सीमा पर आ गई है जहाँ वह सभी के दुख को पहचान सकती हैं। उन्हीं के शब्दों में –

अलि मैं कण–कण को जान चली,

सबका क्रंदन पहचान चली।

कवयित्री के मन में दूसरों के दुख दूर करने की प्रबल आकांक्षा है। वह धूप बनकर दूसरों का जीवन एवं दीप बनकर सबको प्रकाश देने की कामना करती हुई कहती हैं–

'पथ में मृदु स्वेद कण चुन, छाँह से भर प्राण उन्मन,

तम–जलधि में नेह का मोती रचूँगी सीप–सी मैं।

धून–सा तन दीप–सी मैं।''

महादेवी की विरहानुभूति ने इन्हें दृढ़ आत्म–विश्वास भी प्रदान किया है जिसके बल पर वह संसार की सभी बाधाओं से जूझ जाने की क्षमता रखती हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में इनका यही दृढ़ आत्म–विश्वास मुखरित होता है–

और होंगे नयन सूखे तिल बुझे औं पलक रूखें;

आर्द्र चितवन में यहाँ रात विद्युतों में दीप खेला।

अतः महादेवी की विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। उनका विचार है – 'आग हो डर में तभी दृग में सजेगा आज पानी' मात्र करूणा सार्थकता तभी है जब हम इस स्थिति को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जाये। यह शक्ति, यह संघर्ष उनके विरह की विशेषता है। ये आँसू प्रभात की चाह लेकर आँखों में आए हैं। उनकी पलकों में जो स्वप्न हैं वे उसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना चाहती हैं–

यह चंचल सपने भोले मैंने मृदु

पलकों पर तोते हैं

वे सौरभ से पंख इन्हें सब नयनों में पहुँचाना है।

हिन्दी आलोचकों ने महादेवी को विरहानुभूति की कवयित्री तो माना परन्तु उन्हें अन्तर्मुखी वैयक्तिक अनुभूतियों तक ही सीमित रखा और उन्हें पलायनवादी भी कहा गया। उनकी इस प्रवृत्ति को डॉ॰ नगेन्द्र आध्यात्मिक से न जोड़कर मानसिक शारीरिक अतृप्तियों और कुण्ठा से जोड़ते हैं। डॉ॰ विनय मोहन वर्मा के अनुसार महादेवी के काव्य में पीड़ा और पलायन के सिवा कुछ नहीं। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण सुधांशु कहते हैं कि उनका काव्य उनके एकाकी जीवन का प्रतिबिम्ब है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को विरहानुभूति से भर दिया है। परन्तु यदि महादेवी का सही मूल्यांकन किया जाये तो हम पाते हैं कि यदि उनमें निराशा और दुख है तो दूसरी ओर आशा और जीवन की आकांक्षा भी हैं। उनमें पीड़ा और पलायन है तो विद्रोह और संघर्ष भी है। इस संदर्भ में डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय का कथन अक्षरशः सही है– महादेवी वर्मा की कविता के साथ आलोचनात्मक पूर्वाग्रह की स्थिति दिखाई देती है। यह ठीक है कि उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आँसू हैं, अन्तर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली में परोक्ष की प्रधानता है। पर साथ ही

वहाँ असन्तोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी। आलोचकों ने उनके आँसुओं पर ध्यान दिया है लेकिन उनके आक्रोश पर नहीं। प्रायः आलोचकों न यह थी देखने समझने की कोशिश नहीं की है कि महादेवी वर्मा की कविता में जो दुख, वेदना, निराशा और अन्तर्मुखता है वह सब उनके समय की और आज की थी भारतीय स्त्री के जीवन की वास्तविकताएं हैं और संभावनाएं थी।

1.3.4 दुखवादः–

महादेवी की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुख है। यह दुखवाद दो आधार भूमियों पर टिका है – आध्यात्मिक और मानवतावादी भाक्भूमि। मनुष्य ही नहीं उनकी चिंता तो पक्षियों के प्रति भी दिखाई देती है–

पथ न भूले एक पग भी

घर न खाए लघु विहग भी

स्निग्ध लौ की तूलिका से

आँक सबकी छाँह उज्जवल।

उनकी कविताओं में दिन के उजाले की अपेक्षा रात का अंधेरा अधिक है। रात के अपार अन्धकार और निस्तब्धता में एक जलते हुए दीपक का चित्र बार–बार उभरता है। जलना मानो उनके जीवन का पर्याय बन गया। 'दीपशिखा' के 'दो शब्द' में वे लिखती हैं– ''आलोक मुझे प्रिय है पर दिन से अधिक रात का, दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परन्तु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।''

डॉ॰ रामविलास वर्मा कहते हैं कि महादेवी की कविता का परिचय 'नीर भरी दुःख की बदली' कहकर नहीं दिया जा सकता वरन् उसके लिए उपयुक्त पंक्ति है– 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।'

यह दुःख, यह अकेलापन, यह अंधकार तथा निराशा का भाव इसलिए चित्रित है क्योंकि जीवन की चाह है, सुख की कामना है तथा प्रकाश की प्रतीक्षा है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दुःख तथा संघर्ष से वे हार मानने वाली नहीं हैं। वे कहती हैं – मनुष्य मेरे लिए मेरे निकट निरंतर बड़ा है। जीवन से उन्हें अथाह प्रेम है तभी वे ऐसी बातें कह सकी हैं।

1. पंथ होने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला

अन्य होंगे चरण हारे

और हैं जो लोटते दे शूल को संकल्प सारे

दुःख उनके जीवन पथ की क्षणिक अनुभूति नहीं, उनकी सम्पूर्ण साहित्य साधना का मूलाधार है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि उनमें लोक में व्याप्त दुख और निजी दुख को दूर करने की प्रबल आकांक्षा है।

डॉ॰ राम विलास शर्मा ने उचित ही लिखा है – ''पीड़ा के चित्रण मात्र से कोई जीवन को अस्वीकार नहीं करने लग जाता। जीवन में वांछित सौंदर्य और आनन्द के मिलने से भी मनुष्य को पीड़ा होती है। संसार में अगणित मनुष्यों को शोषित और त्रस्त देखकर किसी भी सदस्य को पीड़ा होगी। इस तरह की पीड़ा की अभिव्यक्ति जीवन की स्वीकृत ही मानी जायेगी।

वस्तुतः उनमें वस्तुजगत के साथ संबंध कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है। यह विश्व और उसकी विरह वेदना उनके चिन्तन के दायरे में बनी रहती है।

डॉ॰ शिव कुमार मिश्र मानते हैं कि महादेवी जीवन और जगत को अपनी कविताओं में नहीं भूली हैं। जीवन के प्रति उनका आत्मीय लगाव है और धरती के सौन्दर्य की वे अदभुत चितेरी हैं। डॉ॰ मिश्र लिखते हैं–

''जहाँ तक महादेवी के काव्य में पीड़ा और वेदना की विवृत्ति का, आँसुओं के साम्राज्य का अथवा चिर विरह की अनुभूति का प्रश्न है, अपने रहस्यवादी 'ओवरटोन्स' में भी ये सब मानवीय और लौकिक संदर्भों से विरहित नहीं है। जगह–जगह उन्होंने अपनी इस वैयक्तिक पीड़ा तथा वेदना को अथवा आँसुओं की अथाह राशि को विश्व में व्याप्त पीड़ा तथा वेदना से एकीकृत किया है? अपनी करुणा की अक्षय पूँजी को संसार की निर्धनता एवं अभावों पर लुटाया है। रहस्यवाद के छद्म को हटाकर देखें, महादेवी की कविता की आधारभूमि नितांत मानवीय हैं।

1.4 सारांश

महादेवी वर्मा की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुःख है। उनमें जीवन, प्रेम और सौन्दर्य के लिए विह्वल आकांक्षा है। वह मार्ग की कठिनाइयों से विचलित नहीं होती बल्कि उनसे टकराने की प्रवृत्ति उनमें दिखाई देती है। यह विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। उनके अनुसार मात्र आँसू कुछ नहीं कर सकते। आँसू तभी सार्थक हैं जब कुछ करने की प्रेरणा मन में हो आग हो उर में तभी आँख में सजेगा आज पानी।

निराशावाद की अंधेरी रात में जीवन प्रभात की चाह महादेवी की रचनाओं में बार–बार दीप्त हो उठती है और जितना ही यह अंधेरा घना होता है, उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है।

1.5 कठिन शब्द

परिष्कार
संकीर्णता
परिलक्षित
विलक्षण
विवृति

अथाह

शिथिल
दीप्त

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. महादेवी की विरहानुभूति पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र०3. महादेवी की विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन – डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
2. महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण – पद्यम सिंह चौधरी

.....

महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएँ

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 गीति काव्य : परिभाषा

2.4 मुक्तक, गीत एवं प्रगीत

2.5 हिन्दी गीति काव्य परम्परा

2.6 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं

2.6.1 वैयक्तिकता

2.6.2 विश्व के प्रति करुणा भाव

2.6.3 भाव–प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति

2.6.4 गेयता या संगीतात्मकता

2.6.5 संक्षिप्तता

2.6.6 भाषा–शैली

2.7 सारांश

2.8 कठिन शब्द

2.9 अभ्यासार्थ शब्द

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्यः प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

(1) गीति काव्य के अर्थ से अवगत होते हुए मुक्तक, गीत एवं प्रगीत में अन्तर जान पाएंगे।

(2) हिन्दी गीति काव्य परम्परा से परिचित होंगे।

(3) महादेवी वर्मा की गीति विशेषताओं से अवगत होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

गाने योग्य की गई पद–रचना का नाम 'गीतिकाव्य' है। काव्य–शास्त्रियों द्वारा काव्य कें 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' जो दो भेद किए गए हैं, उनमें 'गीतिकाव्य' 'मुक्तक' वर्ग में आता है। कथाहीन या प्रबन्धहीन मुक्तक–काव्य का एक 'सूक्ति' पक्ष होता है, दूसरा 'संगीत' पक्ष । 'सूक्ति' का चलता अर्थ कोई 'अच्छी बात' या उपदेश है और गीति का अर्थ है 'गाया गया' या गाने योग्य जिसे 'गेयपद' भी कहा जाता है। सूक्ति का सम्बन्ध मानव–मस्तिष्क या उसके 'आचार' पक्ष से रहता है, किन्तु गीत का सीधा सम्बन्ध उसके हृदय या भावनाओं से है। संगीत या गेय पदों की रचना कवि के अत्यंत भाव–विभोर क्षणों में होती है। अतः उसके प्राणों का यह संगीत या 'हृदय का तरंगण' सुनने (या पढ़ने) वालों के हृदयों को भी तरंगित किए बिना नहीं रहता। आधुनिक गीतिकाव्य में भक्ति साहित्य के कवि व गीतिकाव्य अंग्रेजी के 'Lirical Poetry' के सामान्तर है। अंग्रेजी का लिरिकल (Lyrical) शब्द 'लिरिक' (Lyric) से और लिरिक (Lyric) 'लायर' (Lyre) से विकसित हुआ है। लोयर एक प्रकार का वाद्ययंत्र होता है जिसे बजाने के साथ–साथ कुछ गाया भी जाता है। प्रारम्भ में लोयर के साथ गाने वाले गीतों को 'लिरिक' कहा गया परन्तु बाद में यह आवश्यक नहीं रहा कि लिरिक को लायर के साथ ही गाया जाये। परन्तु लिरिकल पोइट्री या गीतिकाव्य के लिए गेयता एक आवश्यक गुण माना गया है।

2.3 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं

गीति काव्य परिभाषाः

पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ ने गीतिकाव्य की परिभाषा 'कवि के सशक्त भावों का उद्वेग' (the spontaneous overflow of powerful emotions) कह कर की है। स्वयं महादेवी के शब्दों ' ''गीतिकाव्य कवि की सुख–दुखात्मक अनुभूति का वह 'शब्द–रुप' है जो अपनी ध्वन्यात्मकता से 'गेय' हो सके।'' गीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है – ''गीत का चिरंतन विषय रागात्मक वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख–दुखात्मक अनुभूति

से रहेगा।''

इसी को डॉ॰ नगेन्द्र ने इन शब्दों में परिभाषित किया है – ''गीत मानव के हर्ष –विषाद का सहज वाहक है जो अब तक अपनी परिभाषा को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।''

डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक के कथनानुसार – ''अपने हृदय के हर्ष –विषाद प्रकट करने के लिए गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है।''

2.4 मुक्तक गीत एवं प्रगीत

पुराने मुक्तक से आधुनिक मुक्तक कविता को अलगाने के लिए प्रगीत अथवा लिरिक शब्द का प्रयोग किया गया। छायावादी आलोचकों ने सभी छायावादी मुक्तकों के लिए 'प्रगीत' शब्द का प्रयोग किया है। ये प्रगीत भाव तथा रूप में मध्ययुगीन मुक्तकों से भिन्न हैं। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन मुक्तक और आधुनिक प्रगीत के अन्तर को बताते हुए कहा है – प्राचीन मुक्तकों में कवि को कल्पना कुछ ऐसे शास्त्ररूढ़ व्यापारों की योजना करती थी जिनसे किसी रस या भाव की व्यंजना मुखर हो। आधुनिक प्रगीत मुक्तक कवि के भावावेग के महत क्षणों की रचना होते हैं। उनमें गीत की सहज और हल्की गति होती है। इनकी गुलदस्ता के साथ तुलना नहीं की जा सकती। ये विच्छिन्न जीवन–चित्र होने पर भी प्रवाहशील होते हैं और इनमें शास्त्र–रूढ व्यापार योजन की आवश्यकता नहीं होती। पुराने रूपकों में कवि कल्पना की समाहार शक्ति प्रधान हिस्सा लेती थी, पर आधुनिक मुक्तकों में कवि का भावावेग ही प्रधान होता है। प्राचीन मुक्तक छन्द के रूढ़ ढाँचे में ढले होते थे। उनमें भावावेग का उतना महत्त्व नहीं था। छन्द के अनुसार भाव अभिव्यक्त किये जाते थे। आधुनिक प्रगीतों में भावावेग का महत्त्व है। भाव के अनुसार गीत के चरण छोटे–बड़े, अधिक तथा कम किये जाते हैं। छायावादी युग में प्रगीत अधिक लिखे गए हैं। यह उस युग की प्रवृति थी। गीत, काव्य और संगीत दोनों की सम्मिलित भूमिका पर अवस्थित होता है। प्रगीत में भाव सघनता व रस प्रवाह का उतना दर्शन नहीं होता जितना कल्पना–वैचित्र्य और कलात्मक सौष्ठव का। वह काव्य के अधिक निकट होता है, संगीत के उतना नहीं। छोटी रचना गीत कहलाती है, टेक और अन्तरा तो गेयता के अनुरोध के बाद में गीतों में लाये गये। महादेवी वर्मा के काव्य में वस्तु या विषय प्रधान कविताओं का निर्माण कम हुआ है, आत्मगत प्रधान गीतों की सृष्टि अधिक हुई है। अतः महादेवी वर्मा का काव्य गीति की कोटि में आता है।

2.5 हिन्दी गीति काव्य परम्परा

काव्य से संगीत का संयोग तो वैदिक काल में हो गया था। परन्तु आज का हिन्दी गीति काव्य उस परम्परा में आता है जिसका पहला स्वर विद्यापति ठाकुर के कंठ से फूटा था। विद्यापति की परम्परा में ही सूर एवं तुलसी आते हैं किन्तु इससे पहले कुछ काल तक हिन्दी जगत कबीर भजनों और सूफियों के कथा संगीत से गूँजता रहा। सूर एवं तुलसी दोनों शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता और भक्त दार्शनिक थे। दोनों ने शुद्ध शास्त्रीय संगीत के आधार पर गीतिकाव्य की सृष्टि की। रीतिकाल में सामंतों की छत्रछाया में शास्त्रीय संगीत को तो प्रोत्साहन मिला किन्तु अपनी भावहीनता के कारण रीतिकालीन काव्य संगीतमय न हो सका।

आधुनिक काल का आरम्भ राष्ट्रीय चेतना के जागरण के साथ हुआ। श्रृंगारिक–काव्य का स्थान सुधारवादी काव्य ने लिया और गीतों का क्षेत्र 'भक्ति' में बदल कर राष्ट्रीय हो गया। जयशंकर प्रसाद ने साहित्यिक गीतों की नई परम्परा चलाई। छायावाद और 'नवोदित रहस्यवाद' ने हिन्दी–गीति को नई दिशा दिखाई। इन गीतों में परम्परागत भक्ति–संगीत की अपेक्षा पाश्चात्य 'लिरिक' का प्रभाव और अनुकरण अधिक था। प्रकृति का स्वाभाविक संगीत, निर्झर–कल–गान, पक्षियों का कलरव, पवन की सनसनाहट, पत्तों का मर्मर–संगीत और उषा–संध्या की प्राकृतिक रागिनिओं के स्वर इस गीतिकाव्य में अधिक मुखरित रहे। हरिवंश राय बच्चन के 'हालावाद' और 'रोमांस' ने हिन्दी गीतों को लोकप्रियता प्रदान की। प्रसाद के गीत अपनी गूढ़ता और दुरूहता के कारण साहित्य मर्मज्ञों को आनन्द देते रहे। निराला के गीत अपनी शास्त्रीय संगीतात्मकता, समासबद्ध शैली और भाव जटिलता के कारण उनकी 'गीतिका' तक सीमित रहे। पंत जी के गीत स्वाभाविक स्वर–संधान पाकर भी 'गीत' के आलाप की योग्यता प्राप्त नहीं कर सके। महादेवी वर्मा रचनाकार के साथ–साथ चिंतक भी रही है। भाव और चिंतन के संयोग से निःसृत अपने गीतों की व्यापकता उन्होंने इन शब्दों में स्पष्ट की है– ''इन गीतों में पराविद्या की अपार्थिकता ली, वेदान्त के अध्ययन की छत्रछाया ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भावसूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिक प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को 'हृदयमय' और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।''

2.6 महादेवी वर्मा की गीति विशेषताएं

महादेवी वर्मा के गीतों में भावात्मकता और कलात्मकता का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। उनमें अनुभूति की तीव्रता नहीं वरन् अनुभूति का संयम है। इनकी गीति विशेषताएं निम्नांकित हैं–

2.6.1 वैयक्तिकताः– काव्य और व्यक्तित्व का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। काव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है– प्रत्यक्ष रूप में और परोक्ष रूप में। महादेवी वर्मा ने परोक्ष रूप को ही अपनाया है, फिर भी इनके जीवन की अथाह वेदना इनके काव्य में मुखरित हो उठी है जिसके साथ इनके जीवन के सहज ही सम्बद्ध किया जा सकता है। प्रियतम से प्रथम मिलन से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक की साधना का अंकन उनके गीतों में मिलता है। प्रिय मिलन की आकांक्षा देखिए–

जो तुम आ जाते एक बार।

कितनी करुणा कितने सन्देश

पथ में बिछ जाते बन पराग।

महादेवी वर्मा को अटल विश्वास है कि –

'तू जल–जल जितना होता क्षय,

वह समीप आता छलनामय।

उनकी 'ज्वलंत साधना' की एकमात्र उपलब्धि है 'प्रिय' का सान्निध्य और उसका साधन है उसके विरह में 'अविराम जलते रहना', निष्कंप दीपशिखा की तरह एक सार.....एक तारा। इसीलिए वह कहती है–

मैं क्यूं पूछूँ यह विरह निशा,

कितनी बीती, क्या शेष रही?

महादेवी वर्मा के अधिकांश गीत 'दीपक' सम्बन्धी हैं जो उनके साधनारत जीवन का प्रतीक हैं। कहीं दीपक उनकी साधना का पथ–प्रदर्शक बन कर 'प्रभात' तक चलने (जलने) वाला सांस का दूत है और कहीं वह स्वयं दीप के दोनों रूपों में निष्कंप जलते रहने के प्रति उनकी प्रबल कामना है.....कामना ही नहीं, उसे जलता रखने के लिए प्रयत्न भी है– मेरे निःश्वासों से द्रुततर,

सुभग न तू बुझने का भय कर,

मैं दृग के अक्षय कोषों से,

ढाल रही नित स्नेह निरन्तर,

सहज–सहज मेरे दीपक जल।

विरह को जी जीवन का ध्येय मानने वाली महादेवी की विरहानुभूति आत्मगत शैली में प्रस्फुटित होती है–

''पर शेष नहीं होगी मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।''

प्रिय–मिलन के लिए अविराम जलना ही महादेवी वर्मा के साधक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है जो उनके गीतों में प्राण–शक्ति बन कर रह रही हैं।

उन्हीं के शब्दों में – जलना ही प्रकाश, उसमें सुख,

बुझना तो तम है? तम में दुख।

2.6.2 विश्व के प्रति करुणा भावः–

महादेवी वर्मा के जीवन में अपने लिए वेदना, किन्तु दूसरों के लिए 'संवेदना' है। दुखी विश्व के प्रति, जीवन–जगत की क्षण–भंगुरता के प्रति और निरीह प्राणियों पर स्वार्थी समाज के अन्याय अत्याचार के विरुद्ध एक सजल करुणा भाव सदैव रहा है–

मत व्यथित हो फूल, किसको सुख दिया संसार ने,

स्वार्थमय सब को बनाया यहाँ कर्तार ने।

उनकी करुणा जहाँ दूसरों के लिए 'संवेदना' है, उनके अपने लिए 'प्रिय' का वरदान है–

बिछाती थी सपनों के जाल,

तुम्हारी वह करुणा की कोर।

इसी 'स्वप्न जाल' में उन्हें प्रिय–दर्शन' होते हैं, उनसे मान–मनौव्वल होता है, चिद–विलास होता है, 'तब वह स्वप्न सत्य' से अधिक विश्वसनीय एवं प्रिय नहीं–

कैसे कहती हो सपना है,

अलि! मूक मिलन की बात,

भरे हुए अब तक फूलों में,

मेरे आँसू, उनका हास।

अतः करुणा स्वयं उनके लिए 'प्रिय' का प्रणायलोक है जिसकी छाया में उन्हें नव दृष्टि भी मिलती है और अपनी भाव–सृष्टि भी।

2.6.3 भाव–प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्तिः–

गीत भावावेश की सहज अभिव्यक्ति होता है। इसलिए इसमें भाव प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। महादेवी वर्मा के प्रारम्भिक गीतों में भाव–प्रवणता का तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक मिलता है–

1. 'अलि! कैसे उनको पाऊँ?

2. हरसिंगार झरते हैं झर झर

   आज नयन आते क्यों थर–थर?

3. कैसे कहती हो सपना अलि। उस मूक मिलन की बात,

   भरे हुए अब तक फूलों में उनके आंसू मेरे हास।

महादेवी वर्मा के गीतों में भाव प्रवणत तो है लेकिन भावों की समास अभिव्यक्ति के कारण इनमें उस अन्तः स्फूर्ति का अभाव है जो एक सफल गीत के लिए अपेक्षित है। यथा –

''चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना?

है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर मुख हो जाना;

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण–भर,

रहने दो प्यासी आँखे भरती आँसू के गागर।

ऐसे गीत विश्लेषण–सापेक्ष है और विश्लेषण का आनन्द सदैव भौतिक आनन्द होता है, काव्य का सहज रस नहीं। महादेवी वर्मा के गीतों में भावावेग का अचानक विस्फोट नहीं होता क्योंकि वह भावों का सहृदय–संवेद्य बनाने के लिए भावातिरेक को संयम की परिधि में बाँधना आवश्यक समझती है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है – ''दुखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयम हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे दुखातिरेक को दीर्घ विश्वास में छिपे हुए संयम में बाँधना होगा। तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।

2.6.4 गेयता या संगीतात्मकता :–

गेयता गीत का प्रमुख तत्व है। महादेवी वर्मा ने गीतों में गेयता का पूरा–पूरा ध्यान रखा है और संगीतात्मकता के सन्दर्भ में डॉ॰ कमलाकांत पाठक का कथन महत्त्वपूर्ण है – ''इसमें संगीत का तत्व है अवश्य पर वह प्राथमिक विशेषता नहीं है। यहाँ मुख्य वस्तु है कवि का भावारूप अतः संगीत का मूल्य औपचारिक है। ''महादेवी वर्मा के गीतों में लय और गति के साथ अर्थ और ध्वनि का पूर्ण सामंजस्य मिलता है–

''अम्बर गर्वित,

हो आया नत,

चिर निस्पन्द हृदय में उसके

उमड़े ही पलकों के सावन,

लाए कौन संदेश नए धन।

मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का। पंक्ति में लयात्मक लम्बाई कवयित्री के चिर–विरह एवं उनकी चिर साधना को साकार कर रही है। इनके अनेक गीतों का वर्ण–विन्यास तो बड़ा ही लयात्मक एवं भावानुरूप है–

सपने जगाती आ।

श्याम चंचल,

स्नेह–उर्म्मिल,

तारकों से चित्र उज्जवलः

घिर घटा–सी चाप से पुलके उठाती आ।

सपने जगाती आ।'

डॉ॰ नगेन्द्र ने महादेवी वर्मा के गीतों की गेयता का विश्लेषण करते हुए लिखा है – 'स्वर तन्त्रियों में गुम्फित कोमल शब्दावली रेशम पर मोती की भाँति ढुलकती जाती है।

2.6.5 संक्षिप्तता :–

महादेवी वर्मा ने प्रायः लघु गीतों की ही रचना की है। छोटे गीतों में भावों की एकतानता विद्यमान रहती है। एक ही भाव प्रारंभ से लेकर अंत तक व्याप्त रहता है। उसमें एक ही लय इस भाव को स्पष्ट करती है। यही गीत की अन्विति है। इसी अन्विति के कारण पूर्वापर संबंध बना रहता है। एक पंक्ति दूसरी को आबद्ध नहीं करती वरन् एक ही भाव को विस्तार देती हुई आद्यंत उसी भाव का नियोजन करती चलती है। संक्षिप्तता से उसे एक निश्चित सीमा मिलती है और गीत में कसाव आता है अन्यथा बड़े गीतों में भाव बिखरने की आशंका बराबर बनी रहती है। महादेवी के कुछ गीत ऐसे हैं जिनमें एक ही भाव नहीं रहता, भाव परिवर्तित हो जाता है। इस तरह के गीतों में भाव–शृंखला टूटती दिखायी पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी के अधिकांश गीत कसे हुए हैं तथा उनमें आद्यंत एक ही भावधारा विद्यमान रहती है। संक्षिप्तता और अन्विति उनका बड़ा गुण है। अगर कवयित्री के समस्त काव्य को ध्यान में रखकर विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि ज्यों–ज्यों उनकी काव्य कला का विकास होता गया त्यों–त्यों उनके गीत संक्षिप्त होते गये हैं।

2.6.6 भाषा–शैलीः–

महादेवी की भाषा अत्यंत समृद्ध है। उन्होंने कल्पना का प्रयोग करते हुए अनेक नए शब्दों को गढ़ा तथा कुछ पुराने शब्दों को नए संदर्भों में ढालकर, तराशकर उन्हें नवीनता प्रदान की है। यद्यपि उनके शब्दों का कोष अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा सीमित है परन्तु उन्होंने भाषा के प्रयोग में जो कुशलता दिखाई है वह अनुपम है। डॉ॰ प्रकाशचंद्र गुप्त महादेवी की भाषा के बड़े प्रशंसक है। वे कहते हैं – ''उनके गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी अनमोल साँचे में ढली भाषा है। भाषा की दृष्टि से वे किसी कवि से पीछे नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन चुनकर–मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी अपनी विशेषता है।

उनमें कल्पना की विशिष्टता तथा भाव और शिल्प की अनुकूलता दिखाई देती है। भाषा परिष्कृत, प्रौढ़, श्रुति–मधुर, ललित, संस्कृत पदावली से युक्त एवं सरस है। एक–एक शब्द के संगीत पर ध्यान रखने के साथ ही

साथ सम्पूर्ण शब्द–संगति के संगीत पर भी ध्यान रखा है। शब्द–संगति बैठाने में स्वर और व्यंजन संबंधी अनुप्रास का सहारा लिया है। उन्होंने अपने आस पास की बोली को अपनाकर लिखा है। इस गीत में लोकगीत की मिठास दिखाई पड़ती है–

मधुर पिक हौले–हौले बोल।

हठीले हौले–हौले बोल।

जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे और,

चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे मौर,

समीरण मत्त उठेगा डोल।

हठीले हौले–हौले बोल।।

'हौले–हौले' शब्द के प्रयोग से गीत में माधुर्य और लयात्मकता का संचार हो गया है। महादेवी की काव्य–भाषा में रागात्मकता, प्रगाढ़ अनुभूति लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता और चित्रात्मकता का अपूर्व समन्वय दिखायी पड़ता है।

2.7 सारांश

हिन्दी गीतिकारों में महादेवी का उच्च स्थान है। छायावाद के कवियों में अभिव्यक्ति की जो गहनता, गूढ़ता एवं रहस्यमयता मिलती है वही महादेवी में भी पाई जाती है पर विचार के औदात्य, भावना के संयम, कल्पना के सौन्दर्य एवं शैली के लालित्य के पारस्परिक सामन्जस्य एवं सन्तुलन की दृष्टि से महादेवी इन सबसे आगे दिखाई पड़ती हैं। हिन्दी गीतिकाव्य में महादेवी का योगदान चिरस्थायी रहेगा। उनके गीत 'साहित्य' की अमर निधि बन कर रहेंगे।

2.8 कठिन शब्द :

आत्मनिवेदन
आत्मनिष्ठा
संवेग
अपार्थिव
आर्त्तक्रन्दन
प्रणयन
अन्विति
आबद्ध
आघंत
प्रगाढ़

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्र०1. गीति काव्य के प्रमख तत्वों को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी के गीतिकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

प्र०3. मुक्तक, गीत तथा प्रगीत पर एक संक्षिप्त लेख लिखें।

_____

_____

_____

2.10 संदर्भ ग्रन्थ :

1. महादेवी : नया मूल्यांकन – डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त

2. महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण – पद्यम सिंह चौधरी

.....

महादेवी वर्मा की रहस्य भावना

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 रहस्यवाद : परिभाषा

3.4 महादेवी वर्मा की रहस्य भावना

3.4.1 बौद्ध–दर्शन

3.4.2 अद्वैत दर्शन

3.4.3 ब्रह्म

3.4.4 सृष्टि

3.4.5 जीवात्मा

3.4.6 माया

3.4.7 मुक्ति

3.4.8 रहस्यवाद के विविध सोपान

3.5 सारांश

3.6 कठिन शब्द

3.7 अभ्यासार्थ शब्द

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्देश्यः प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

(1) रहस्यवाद के अर्थ एवं स्वरूप से परिचित होंगे।

(2) महादेवी की रहस्य भावना के विविध पक्षों से परिचित होंगे।

(3) महादेवी के रहस्यवाद में विविध सोपानों का उद्‌घाटन होगा।

3.2 प्रस्तावनाः

रहस्य–भावनाओं का चिन्तन एवं उनकी अभिव्यक्ति भारतीय दर्शन तथा काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। हिन्दी का निर्गुण साहित्य तो एक प्रकार से दर्शनों की काव्यभिव्यक्ति कहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति मध्ययुगीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों तक दिखाई देती हैं। परन्तु रहस्यवाद हिन्दी में छायावादी काव्य आन्दोलन से सम्बद्ध है। डॉ॰ नामवर सिंह के अनुसार – ''हिन्दी साहित्य में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग 1920 से पहले नहीं दिखायी पड़ता। जब मुकुटधर पाण्डेय, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद की नवीन कविताएँ प्रकाश में आयीं तो उनकी आलोचना–प्रत्यालोचन के सिलसिले में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग किया गया। कवीन्द्र रवीन्द्र की अंग्रेजी 'गीतांजलि' को देशी–विदेशी आलोचनों ने 'मिस्टिक' कहा था, इसलिए हिन्दी में भी उस तरह की कविताओं को 'मिस्टिसिज्म' समझकर उनके लिए हिन्दी शब्द रहस्यवाद चलाया गया।

3.3 रहस्यवादः परिभाषा

रहस्य, रहस्यानुभूति, रहस्यवाद शब्द अंग्रेजी के मिस्ट्री (Mystry) मिस्टिक (Mystic) और मिस्टिसिज्म (Mysticism) से सम्बन्द्ध हैं। 'मिस्ट्री' का सामान्य अर्थ है कोई गुप्त या छिपी हुई बात जिसे 'रहस्य' कहा गया। 'मिस्टिसिज्म' का अर्थ है– अन्तिम सत्य या परमात्मा से एकता की तात्कालिक अनुभूति। अतः कहा जा सकता है कि रहस्यवाद का सम्बन्ध एक विशिष्ट अनुभूति से है। इसका क्षेत्र आध्यात्मिक है और इसका लक्ष्य आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति प्राप्त करना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के आध्यात्मिक रूप पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद हैं। 'इन्होंने रहस्यवाद को दो प्रकार का माना है– साधनात्मक और भावात्मक / साधनात्मक रहस्यवाद प्राचीन कवियों में पाया जाता है और भावात्मक रहस्यवाद छायावादी कविता में। शुक्ल जी ने छायावादी कवियों में केवल महादेवी को ही रहस्यवादी कवयित्री स्वीकार किया

है। उनके अनुसार अन्य कवि तो प्रतीकात्मक और लाक्षणिक अभिव्यंजना के द्वारा छायावाद के अन्तर्गत आते हैं। शुक्ल अद्वैतवादी और रहस्यवादी को समान मानते हैं। अद्वैतवादी चिन्तन और तर्क को प्रधानता देता है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर आश्चर्यचकित हो उठता है जबकि रहस्यवादी उस स्थिति पर पहुँचकर अपना सब कुछ खोकर आनन्दविह्वल हो उठता है।

सर्वत्र उसे प्रिय का ही दर्शन होता है। डॉ॰ रामकुमार वर्मा रहस्यवाद की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि –''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्य से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है, यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।'' डॉ॰ वर्मा के अनुसार ब्रह्म और जीव का संबंध उन्हें अभिन्न स्थिति तक पहुँचा देता है। जीव अपनी पृथक सत्ता को भूलकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। डॉ॰ विश्वम्भर 'मानव' का कथन भी लगभग यही है। उनके अनुसार–''आत्मा और ब्रह्म की इसी पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहते हैं। डॉ॰ राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं–''रहस्यवाद रहस्यदर्शियों का वह सांकेतिक कथन या वाद है जिसके मूल में अखंडानुभूति और तत्वानुभूति निहित हैं।''

जयशंकर प्रसाद रहस्यवाद की परम्परा को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं और अपने कथन को पुष्ट करने के लिए आगम ग्रंथों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनकी दृष्टि में ''काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्यधारा रहस्यवाद है।'' प्रसाद रहस्यानुभूति की इस आनन्दावस्था को संकल्पात्मक मानते हैं और उसमें तर्क या बौद्धिकता को स्थान नहीं देते हैं।

महादेवी वर्मा का मानना है कि अखण्ड चेतना से तादात्म्य की स्थिति बौद्धिक भी हो सकती है किन्तु बुद्धि की अपेक्षा इसमें हृदय का विशेष महत्व है। उन्होंने प्राचीन और नए रहस्यवाद पर विचार करते हुए लिखा है–''प्राचीन काल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिए उसमें स्थान कहाँ? वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी या पारलौकिकी सत्ता विषयक मत–मतान्तर मस्तिष्क से अधिक संबंध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध–बुद्ध चेतना को विकारों में लपेट रखने का एकमात्र साधन है। आज गीत में हम जिसे नए रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं, वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के संकेतिक दाम्पत्य–भावसूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'' महादेवी रहस्यवाद में भावना को विशेष स्थान देती हैं। रहस्यवाद दर्शन और ज्ञान से आधार लेता है। परन्तु उसके भीतर जो अथाह अनुभूति का स्रोत है वह लौकिक प्रणयानुभूति पर आधारित है इसीलिए इतना मार्मिक, रागात्मक और संवेदनपरक है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि रहस्यवाद का संबंध विश्वासात्मक सत्ता की अनुभूति से है। इसका दार्शनिक आधार अद्वैतवाद है। इसमें जीवात्मा परमात्मा के साथ निकट का संबंध स्थापित

करना चाहती है। महादेवी जी के अनुसार प्रकृति के माध्यम से असीम चेतन से, उस पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण करते हुए रागात्मक संबंध की स्थापना का प्रणय निवेदन रहस्यवाद है।

महादेवी रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए कहती हैं–"जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उस के असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक–एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस संबंध में मानव–हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय संबंधों में जब तक अनुरागजनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।

3.4 महादेवी वर्मा की रहस्य भावना

महादेवी वर्मा का रहस्यवादी चिन्तन उपनिषदों तथा वेदान्त की अद्वैत दर्शन पर आधारित है। उनका जीवन दर्शन बौद्धमत से प्रभावित है परन्तु अपने रहस्यवादी चिन्तन में उन्होंने बौद्ध–दर्शन की मान्यताओं को कम स्वीकार किया है। उनकी ब्रह्म, जीव, सृष्टि, माया आदि से सम्बन्धित अवधारणाएं अद्वैत दर्शन से ली गई हैं। अद्वैत दर्शन और बौद्ध दर्शन भारतीय चिन्तन के दो परस्पर विरोधी धाराओं की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ हैं। महादेवी वर्मा ने इन दोनों को आत्मसात् करके एक ऐसा रूप प्रदान किया है जहाँ दोनों में कोई विरोध नहीं।

3.4.1 बौद्ध–दर्शन

बौद्ध–दर्शन के प्रति उनका आकर्षण छोटी आयु में ही हो गया था। इस संदर्भ में वह कहती हैं– "बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।" उनके साहित्य में दुःख की भावना को प्रमुख स्थान मिला है। वह दुःख को जीवन दर्शन के रूप में व्याख्यायित करती हैं। उन्हें दुःख प्रिय है क्योंकि दुःख ही व्यक्ति को एक–सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है।

दुःखवाद उनके चिन्तन का प्रमुख स्वर है। उन्होंने दुःखवाद को चार सूत्रों में प्रस्तुत किया है। संसार दुखों से परिपूर्ण है, दुःखों के पीछे कारण हैं, सांसारिक दुःख का निरोध हो सकता है और दुःख ही निरोध का उचित मार्ग है। वह परमात्मा को दुःख के रूप में ही देखना चाहती हैं–

तुम दुःख बन इस पथ से आना,

शूलों में नित मृदु पटल–सा,

खिलने देना मेरा जीवन,

क्या हार बनेगा वह जिसने

सीखा न हृदय को बिंधवाना।

कवयित्री संसार की प्रत्येक उपलब्धि, चाहे वह कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, दुःख के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए त्याग देना चाहती है। वह मुक्ति का तिरस्कार भी इसीलिए करती है कि वहाँ वेदना के लिए कोई स्थान नहीं है –

'जिसमें कसक न सुधि का दंशन

प्रिय में मिट जाने के साधन;

वे निर्वाण–मुक्ति उनके;

जीवन के शत बंधन मेरे हों।

महादेवी वर्मा के रहस्यवादी चिन्तन पर बौद्ध मत का प्रभाव उनकी दुःख सम्बन्धी धारणाओं पर पड़ा है तो अद्वैत का प्रभाव उनकी रहस्यवादी कविताओं में मिलता है।

3.4.2 अद्वैत दर्शन

अद्वैत दर्शन आत्मा और परमात्मा को अभिन्न मानता है अथात् आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है, पर शरीर का आवरण बीच में आने से दोनों भिन्न–भिन्न भासित होते हैं। जब यह आवरण हट जाता है तो अंश–अंशी में मिलकर तदाकार हो जाता है। आत्मा और परमात्मा के इसी प्रकार के सम्बन्ध को अद्वैत–द्वैत–भाव से रहित–सम्बन्ध कहते हैं। महादेवी के काव्य में इस भावना का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है यथा–

'चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,

मधुर राग तू मैं स्वर–संगम;

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय!'

इन पंक्तियों में कवयित्री ने बताया है कि मेरा और परमात्मा का वही सम्बन्ध है जो रेखा और चित्र का, स्वर और राग का होता है। आत्मा भी परमात्मा की भाँति असीम ही है, किन्तु भ्रम के कारण–शरीर का आचरण बीच में आने के कारण –उसे ससीम मान लिया गया है। निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा और परमात्मा की द्वैत स्थिति का चित्रण है–

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी;

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;

तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,

पात्र भी मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी;

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।'

इन पंक्तियों में आत्मा के विविध रूपों से यही प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म का अंश होने से आत्मा भी विविध रूपी है।

3.4.3 ब्रह्म

महादेवी ब्रह्म का असीम, अगोचर और शाश्वत सत्ता के रूप में मानती हैं। ब्रह्म के स्वरूप के प्रति उनकी पूर्ण आस्था है। ब्रह्म ही सृष्टि के आदि कारण हैं और अंत में सृष्टि उन्हीं में विलीन हो जाती है–'तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नशा' ब्रह्म और सृष्टि के संबंधों को उपनिषद में दृष्टांत देकर बताया गया है। जैसे मकड़ी जाले को अपने आप में से उत्पन्न करती है और अंत में उसे पुनः निगल लेती है उसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि का सृजन और लय होता है। जिस प्रकार बीज से पेड़–पौधे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि उत्पन्न होती है और जैसे शरीर पर अपने आप केश और रोएँ उत्पन्न होते हैं वैसे ही बिना आयास के ब्रह्म से सृष्टि का आदि और अवसान ब्रह्म में ही निहित है। महादेवी की विचारधार अद्वैतवाद पर आधारित है अतः वे निर्गुण ब्रह्म की आराधिका हैं परन्तु उनमें कट्टरवादिता नहीं है। उन्होंने निर्गुण और सगुण के भेद को गौण कर दिया है। प्रियतम के रूप में उनका ब्रह्म गुणों से विभूषित हो जाता है। उदाहरणार्थ–

1. उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन।
2. मैं मतवाली इधर उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।
3. करुणामय को भाता है तम के परदे में आना।

वे ब्रह्म की सत्ता कण–कण में व्याप्त देखती हैं। इस तरह उन्हें सर्वात्मवादी भी कहा जा सकता है।

महादेवी इस असीम से रागात्मक संबंध स्थापित करती है। इस असीम की सत्ता अव्यक्त होते हुए भी जगत, और उसके क्रियाकलापों में व्यक्त भी होती है। उनके अनुसार–''जीवन का यह असीम और चिरंतन सत्य जो परिवर्तन की लहरों में अपनी क्षणिक अभिव्यक्ति करता रहता है, अपने व्यक्त और अव्यक्त दोनों की रूपों में एकता लेकर साहित्य में व्यक्त होता है।'' महादेवी कवयित्री के साथ ही साथ तत्व चिंतक भी हैं। परन्तु उनका चिन्तन शुष्क न होकर

अनुभूतियों ये युक्त होकर काव्यमय बन गया है। यह विराट चेतन अत्यन्त मनमोहक तथा करुणामय है। यह स्वप्नलोक की सृष्टि करता है और चुपचाप आकर मुरली की तान सुना जाता है–

मूक प्रणय, से, मधुर व्यथा से

स्वप्न लोक के से आन

वे आये चुपचाप सुनाने

तब मधुमय मुरली की तान।

3.4.4 सृष्टि

यह सृष्टि ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। पहले केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। एकाकी ब्रह्म का मन न रमा अतः उसने सोचा कि मैं एक से अनेक को जाऊँ, सृष्टि करूँ। ब्रह्म की इसी अनादि वासना के फलस्वरूप सृष्टि की रचना संभव हुई। महादेवी इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहती हैं–

स्वर्णलता सी कब सुकुमार,

हुई उसमें इच्छा साकार

उगल जिसने तिन रंगे तार

बुन लिया अपना ही संसार।

सृष्टि का निर्माण करके स्वयं ब्रह्म भी इस भौतिक में व्याप्त हो गया। चिन्तकों ने इस संसार को कारागार कहा है। निराला कहते हैं –''गहन है यह अंध कारा।'' महादेवी कहती हैं कि जगत प्राणियों के लिये ही नहीं स्वयं परमात्मा के लिये भी कारागार है।

3.4.5 जीवात्मा

मूलतः आत्मा और परमात्मा एक है। आत्मा परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। यही आत्मा जब देह धारण कर संसार में आती है तो परमात्मा से उसकी दूरी हो जाती है। परमात्मा से अभिन्न रहकर भी वह उससे भिन्न दिखायी पड़ती है। इसी को जीवात्मा कहते हैं। सृष्टि में आकर यही जीवात्मा परमात्मा से विरह का अनुभव करती है। परमात्मा अलौकिक, असीम, अनश्वर तथा विराट है तो जीवात्मा लौकिक, ससीम, नश्वर तथा लघु–

क्षुद्र है मेरे बुद् बुद् प्राण।

तुम्ही में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।

3.4.6 माया

अद्वैतवादियों के अनुसार परमात्मा की मूल शक्ति 'माया' है। महादेवी ने माया को जगत की सृष्टि का मूल कारण, ब्रह्म का आवरण तथा जीवात्मा का बंधन बताया है। इसी ''माया'' के द्वारा ब्रह्म जगत की सृष्टि करता है। जगत के नाना रुप–भेद माया के ही कारण हैं या यही माया जीवात्मा में यह बोध कराती है कि वह परमात्मा से भिन्न है। माया एक आवरण की तरह परमात्मा और जीवात्मा के बीच विद्यमान रहती है इसी कारण जीवात्मा अपने मूल रूप को भूलकर संसार के मोहक, रंगीले तथा सजीले रूपों में उलझकर रह जाती है। जीव में पृथकता का बोध होता है। इसी पृथकता बोध के कारण राग–द्वेष लालसा, कामना, आशा–निराशा के भाव जगते हैं। माया से मुक्त होते ही स्थिति बदल जाती है। महादेवी इसे दर्पण के रूपक के द्वारा बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त करती हैं। जिस प्रकार दर्पण के कारण एक ही व्यक्ति के अनेक रूप दिखायी पड़ते हैं उसी प्रकार माया के कारण एक ही ब्रह्म पृथक पृथक रूपों में दिखायी पड़ता है। मायारूपी दर्पण के टूट जाने पर पुनः अभिन्नता का भाव आ जाता है–

टूट गया वह दर्पण निर्मम।

.....

अपने दो आकार बनाने,

दोनों का अभिसार दिखाने

भूलों का संसार बसाने

जो झिलमिल–झिलमिल सा तुमने

हँस–हँस दे डाला था निरूपम!

.....

आज कहाँ मेरा अपनापन

तेरे छिपने को अवगुण्ठन

मेरे बंधन तेरा साधन,

तुम मुझमें अपना सुख देखो

मैं तुममें अपना दुःख प्रियतम!

महादेवी माया के उन रूपों की चर्चा करती हैं जिनका वर्णन अद्वैत दर्शन में है परन्तु वे उसे लौकिक आधार प्रदान करती हैं। वे अद्वैतवादियों की भाँति माया की निन्दा नहीं करती वरन् उसके प्रभाव का अंकन करती हैं।

3.4.7 मुक्ति

संसार के नाना जन्मों के बंधन से मुक्ति पा जाना ही मोक्ष हैं। महादेवी के रहस्यवादी चिन्तन की खास विशेषता है कि वे अपने अंह की रक्षा करती हैं– अपने व्यक्तित्व का विलय नहीं करना चाहती। उनका यह अभिमान देखने योग्य है। वे कहती हैं–

सजनि मधुर निजत्व दे

कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।

वे गर्व से अपने व्यक्तित्व की घोषण करती हैं–

उनसे कैसे छोटा है,

मेरा यह भिक्षुक जीवन

उसमें अनन्त करूणा है,

इसमें अनन्त सूनापन।

वस्तुतः मुक्ति एक अनुभूति है जिसे जीवन रहते ही प्राप्त किया जा सकता है। सात्विकता के उदय से जब जीवात्मा मनोविकारों से छुटकारा पा लेती है तो परमात्मा से एकता की अनुभूति होती है। इसे ही मुक्ति कहते हैं। ज्ञान तथा जीवन्मुक्ति योग के द्वारा जीवन में ऐसी मुक्ति संभव है। यह मानवता के लिए बहुत बड़ा संदेश है। महादेवी ने इस मुक्ति को स्वीकार किया है।

3.4.8 रहस्यवाद के सोपान

रहस्वाद आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन है, पर आत्मा परमात्मा से एकदम नहीं मिल पाती, परमात्मा तक पहुँचाने के लिए उसे विविध सोपानों को पार करना पड़ता है। प्रेममार्गी कवियों ने इन्हें 'बसेरे' कहा है। महादेवी के रहस्यवाद में भी विविध सोपानों का उल्लेख मिलता है।

जब आत्मा किसी अदृश्य, अज्ञात एवं विराट् सत्ता के प्रति कुतूहल तथा जिज्ञासा के भावों से आवेष्टित रहती है, तो यह रहस्यवाद का प्रथम सोपान कहलाता है। महादेवी की 'नीहार' कृति उनकी इसी अवस्था की द्योतिका है। इस सम्बन्ध में कवयित्री ने स्वयं कहा है– 'नीहार के रचना–काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कौतूहल–मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।' इससे स्पष्ट है कि कवयित्री की आत्मा को ब्रह्म का आभास तो हो चुका था, पर वह उसके समूचे रूप को भली प्रकार नहीं जान पाई थी। उनके मन में ब्रह्म की सत्ता का ज्ञान जिज्ञासा से भरा हुआ था–

'ढुलकते आँसू–सा सुकुमार बिखरते सपनों–सा अज्ञात,

चुराकर अरुणा का सिन्दूर मुस्कराया जब मेरा गात;

छिपाकर लाली में चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन?'

प्रथम सोपान को पार करके जब आत्मा दूसरे सोपान में प्रवेश करती है तो उसे समूची प्रकृति में परमात्मा की सत्ता परिलक्षित होने लगती है। इस सोपान को 'सर्ववाद की स्थिति' भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस स्थिति में आकर आत्मा प्रकृति के प्रत्येक कण में परमात्मा की सत्ता की अनुभूति करने लगती है। रवि, शशि, चपला, तारे आदि सभी में उसे परम सत्ता दिखाई देने लगती है। महादेवी की निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा की इसी स्थिति का वर्णन है–

'रवि शशि तेरे अवतंस लोल,

सीमंत जटित तारक अमोल;

चपला विभ्रम स्मित इन्द्रधनुष,

हिम–कण बन झरते स्वेद–निकर।'

प्रकृति के माध्यम से कवयित्री को परम सत्ता का संदेश भी मिलता है–

'सिहर–सिहर उठता सरिता–उर,

खुल–खुल पड़ते सुमन सुधा पर;

मचल–मचल आते पल फिर–फिर,

सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी!'

दूसरे सोपान के पश्चात् आत्मा परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न करती है। वह उस परम सत्ता से नित नये सम्बन्ध जोड़ने लगती है। महादेवी ने उसे 'प्रियतम' के रूप में ग्रहण किया है जिसके कारण के स्वयं को 'अमर सुहाग भरी' मानती हैं–

'सखि ! मैं हूँ अमर सुहाग भरी,

प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!'

तीन सोपानों को पार करने के पश्चात आत्मा प्रियतम या परम सत्ता के इतने निकट आ जाती है कि वह स्वयं को अपना मूल्यांकन करने में समर्थ समझने लगती है। महादेवी अपने प्रिय की अपार सुन्दरता का वर्णन इन शब्दों में करती हैं–

'तेरी आभा का कण नभ को,

देता अगणित दीपक दान;

दिन को कनक–रश्मि पहनाता,

विधु को चाँदी का परिधान!'

कवयित्री अपने प्रियतम के सम्पूर्ण रूप से परिचित हो चुकी है। उसकी धारणा है कि समूची प्रकृति में बिखरा हुआ अपार सौन्दर्य उसके प्रियतम की आभा का ही प्रतिबिम्ब है, उस असीम सौन्दर्यागार के समक्ष आत्मा का सौन्दर्य अमित छवि की तुलना में एक लघु तारे के समान है–

'तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार;

तेरी रेखा–रूप –हीनता है जिसमें साकार!'

पंचम सोपान में पहुँचकर आत्मा परम सत्ता के प्रति विरहानुभूति करने लगती है और उसके विरह् में निरन्तर व्यथित रहती है। इसी दशा में आने से आत्मा और परमात्मा के समस्त व्यवधान समाप्त होते हैं तथा वे दोनों एकाकार जो जाते हैं। महादेवी अपनी विरह–व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं–

'इन ललचाई आँखों पर पहरा जब था व्रीड़ा का,

साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का;

उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते,

आँखों के कोष हुए है मोती बरसाकर रीते।'

और अपने प्रियतम के साथ अपनी एकाकारता का वर्णन वे इन शब्दों में करती हैं–

'प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ?

× × × ×

'तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?'

× × × ×

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

इस विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी के रहस्यवाद में विविध सोपानों का पूर्ण उल्लेख मिलता है। महादेवी के रहस्यवाद का विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा– 'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी

ही रहस्यवाद के भीतर रही है।' आचार्य शुक्ल का यह मंतव्य निर्भ्रान्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।'

3.5 सारांश

महादेवी वर्मा की रहस्य भावना की प्रमुख विशेषताएं हैं– मनुष्य का प्रकृति से तादात्म्य, प्रकृति पर चेतना का आरोप, प्रकृति की समष्टि में रहस्यानुभूति, असीम की अनन्त सत्ता में मधुर व्यक्तित्व का आरोपन करके उसके प्रति समर्पण, सार्वभौमिक करूणा आदि का तत्व चिन्तन। आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए जिन विविध सोपानों को पार करना पड़ता है वे सभी इनके काव्य में उपलब्ध हैं।

3.6 कठिन शब्द

अपार्थिवता
आत्मप्रसार
विभूषित
प्रत्यालोचना
उत्कंठा
असीम

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. महादेवी की रहस्यभावना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी के काव्य में रहस्यवाद के अन्तर्गत ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

प्र०3. महादेवी के काव्य में प्रकृति पर लेख लिखें।

_____

_____

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन – डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
2. महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण – पद्यम सिंह चौधरी

.....

महादेवी वर्मा की काव्य कला

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 महादेवी की काव्य कला

4.3.1 कोमलकान्त पदावली

4.3.2 लाक्षणिकता

4.3.3 संगीतात्मकता

4.3.4 प्रकृति का मानवीकरण

4.3.5 अप्रस्तुत विधान

4.3.6 छन्द विधान

4.3.7 चित्रात्मकता

4.3.8 प्रतीकात्मकता

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ शब्द

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 उद्देश्यः यह इकाई महादेवी वर्मा की काव्य कला पर आधारित है। इसके अध्ययन उपरान्त आप–

- छायावादी काव्य भाषा का स्वरूप जान पाएंगे।
- महादेवी वर्मा की काव्य भाषा एवं शब्द योजना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- महादेवी के काव्य में प्रयुक्त छन्द विधान से परिचित होंगे
- महादेवी के अप्रस्तुत–विधान की विशिष्टताओं को समझ सकेंगे।
- महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान द्वारा आए काव्य सौष्ठव को जान पाएंगे।
- महादेवी के प्रतीक–विधान की कलात्मकता से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावनाः

काव्य के दो पक्ष होते हैं– अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष। इन्हें ही क्रमशः भावपक्ष एवं कलापक्ष कहा जाता है। अनुभूति पक्ष काव्य का साध्य है तो अभिव्यक्ति पक्ष साधन। भावपक्ष की प्रबलता कवि के आत्मबल और रागात्मक शक्ति का परिचय देती है तो कलापक्ष की सबलता उसके व्यक्तित्व की अलौकिकता का। शरीर और आत्म–सौन्दर्य के सामंजस्य में जैसे जीवन आकर्षक बन जाता है' उसी प्रकार काव्य के सौन्दर्य अथवा प्रभाव का निखार निहित है। जिस कवि में यह क्षमता जितनी अधिक होगी, उतना ही उसका काव्य 'जीवित' तथा प्रभावशाली होगा।

4.3 महादेवी की काव्य कला

महादेवी वर्मा ने अपने भाव बोध के आधार पर भाषा की संरचना की। नए–नए शब्द गढे और भावाभिव्यंजना की नूतन शैली तलाश की। उन्होंने छायावादी काव्य धारा को नई भंगिमा ही नहीं दी वरन नए भाव तथा विचार भी दिए। उनकी भाषा की समृद्धता इसका प्रमाण है। उनके काव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान, अनुभूति की गहनता, संवेदना की व्यापकता, अनूठे अप्रस्तुत विधान, कलात्मक बिम्बात्मकता और महत्त्वपूर्ण प्रतीक विधान का अपूर्व संयोजन मिलता है। महादेवी वर्मा की काव्य कला की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं–

4.3.1 कोमलकान्त पदावली

महादेवी वर्मा अपने शब्द चयन के प्रति अत्यन्त जागरूक रही हैं, इसीलिए उन्होंने सभी प्रकार के शब्दों को भावाभिव्यंजना के लिए उपयुक्त मान कर निस्संकोच ग्रहण किया है। तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया

गया है जिससे इनका काव्य कहीं–कहीं दुर्बोधता की सीमा तक पहुँच गया है। उदाहरण –

'डर का दीपक चिर स्नेह अतल

सुधि लौ शत झंझा से निश्चल;

सुख से भीनी दुख से गीली

वर्ती–सी साँस अशेष रही।

मैं क्यों पूछूँ यह विरह–निशा

कितनी बीती क्या शेष रही।

तत्सम शब्दों के अतिरिक्त इन्होंने तद्भव, देशज, ध्वन्यात्मक तथा विदेशी सभी तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। बिछौना, साँस, सुहाग, छाँह, पीर, रीता, सपना, आलस, अमोल, गगरी, नींद, चितेरा आदि अनेक तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण–

उस सोने से सपने को,

देखे कितने दिन बीते,

आखों के कोश हुए हैं,

मोती बरसा कर रोते।

देशज शब्दों में हौले–हौले, धीरे–धीरे, कजरारे, अलबेला, मतवारे, पाहुन आदि शब्दों का कुशल प्रयोग मिलता है। उदाहरण –

मुख पिक हौले–हौले बोल।

हठीले हौले–हौले बोल।

वर्ण–मैत्री इनकी शब्द –योजना की एक प्रमुख विशेषता रही है। इनके काव्य में वर्णों की मात्राएँ, उनका गठन और उनकी रूप–रचना प्रायः समान होती है। एक ही वर्ण की आवृत्ति सतत् नहीं होती। अतः उनकी कविताओं की पंक्तियों में अनुप्रास का प्रयोग न होते हुए भी वे अनुप्रास का आभास देती है। उदाहरण –

कर व्याथाएँ

सुन कथाएँ

तोड़ सीमा की प्रथाएँ

प्रातः के अभिषेक को हर दृग सजाती आ।

डर–डर बसाती आ।

सपने सजाती आ।

4.3.2 लाक्षणिकता

लाक्षाणिकता की दृष्टि से महादेवी की कला भव्य एवं सफल सिद्ध होती है। इन्होंने अपने गीतों में अनेक भावों के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। थोड़ी–सी रेखाएँ तथा थोड़े से रंगों से उभरते हुए चित्रों के समान इनकी कविता में अल्प शब्दों के सहारे अनेक सुन्दर चित्र चित्रित हुए हैं। उदाहरण –

'देखकर कोमल व्यथा को

आँसुओं के सजल रथ में,

मोम–सी साधें बिछा दीं

थीं इसी अंगार–पथ में,

स्वर्ण हैं वे मत कहो अब क्षार में उनको सुला लूँ। निम्न पंक्तियों में लाक्षणिक मूर्त्तिमता का चित्र अत्यन्त मादक तथा प्रभावोत्पादक है–

सकुच सजल खिलती शेफाली,

असल मौल श्री डाली–डाली;

बुनते नव प्रवाल कुंजों में,

रजत श्याम तारों से जाली;

शिथिल मधु–पवन गिन गिन मधु कण

हरसिंगार झरते हैं झर–झर।

4.3.3 संगीतात्मकता

महादेवी वर्मा के गीतों में भावों के उन्मेष के चित्रण में संगीतात्मक तथा लयात्मक शब्दों का सहारा लिया गया है। शब्दों के माध्यम से संगीत की सृष्टि करने में कवयित्री माहिर हैं –

सिहर–सिहर उठता सरिता डर

खुल–खुल पड़ते सुमन सुधा भर

मचल मचल आते पल फिर–फिर

सुन प्रिय की पदचाप हो गयी

पुलकित यह अवनी।

यहाँ सिहर–सिहर, खुल–खुल, मचल, मचल शब्दों द्वारा संगीत का सुन्दर विधान हुआ है।

महादेवी वर्मा का काव्य गीतिकाव्य है जिसमें साहित्यिक गीतों की विशेषताएं हैं और लोग गीतों की भी। लोक गीतों का लयात्मक संगीत इनके अनेक गीतों में मिलता है। यथा–

'जो तुम आ जाते एक बार।

हँस उठते पल में आर्द्र नयन धुल जाता ओठों का विषाद,

छा जाता जीवन में वसंत लुट जाता। चिर–संचित विराग,

आखें देतीं सर्वस्व वार।'

कौन तुम मेरे हृदय में?

अनुसरण निश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर?

चूमदे पद–चिन्ह किसके लौटते यह श्वास फिर फिर?

कौन बंदी कर मुझे अब बँध गया अपनी विजय में?

कौन तुम मेरे हृदय में?'

जो न प्रिय पहचान पाती!

दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत–सी तरल बन? क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन? किसिलए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती?'

छायावाद की एक खास विशेषता है ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके नाद से अर्थ की व्यंजना होती हो। इन शब्दों की लय और ध्वनि काव्य में संगीत की सृष्टि करने में सहायक होती हैं।

रजत शंख–घड़ियाल स्वर्ण वंशी–वीणा–स्वर,

गये आरती बेला को शत–शत लय से भर।

आरती की बेला में मंदिर में अनेक वाद्य यंत्रों से व्याप्त ध्वनियों का नादमय सजीव वातावरण चित्रित है। शंख, घंटे, वंशी तथा वीणा के समवेत स्वर की अनुगूँज नाद सौंदर्य की सृष्टि करती है। महादेवी के गीतों में भावों के उन्मेष के चित्रण में संगीतात्मक तथा लयात्मक शब्दों का सहारा लिया गया है। शब्दों के प्रयोग द्वारा संगीत की सृष्टि करने में कवयित्री माहिर हैं –

सिहर–सिहर उठता सरिता उर

खुल–खुल पदते सुमन सुधा भर

मचल–मचल आते पल फिर–फिर

सुन प्रिय की पदचाप हो गयी

पुलकित यह अवनी।

4.3.4 प्रकृति का मानवीकरण

छायावादी काव्य में प्रकृति का इतने विस्तार और इतने रूपों में चित्रण हुआ है कि कुछ आलोचकों ने इस काव्य को प्रकृति–काव्य ही कह डाला। महादेवी वर्मा ने भी प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण किया है–

पिक की मधुमय वंशी बोली,

नाच उठी सुन अलिनी, भोली;

अरूण सजल पाटल बरसाता,

तम पर मृदु पराग की रोली;

मृदुल अंक धर दर्पण–सा सर,

आँक रही निशि–दृग–इन्दीवर।

आज नयन अति क्यों भर–भर?

यह प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है। इसके अतिरिक्त आलम्बन, पूर्वपीठिका, उपदेशक आदि सभी रूपों में कवयित्री ने प्रकृति का चित्रण किया है। उनका प्रकृति के प्रति आत्मीयता का दृष्टिकोण रहा है। अतः उन्होंने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोपण करके इस आत्मीयता की अभिव्यक्ति की है। वर्षा ऋतु में बादलों को छाये देख कर महादेवी की प्रतिमा एक ममतामयी माँ की कल्पना करती हुई उससे दुखी जगत रूपी शिशु को गोद में ले लेने की मनुहार करती हुई कहती हैं–

रूपसि तेरा धन–केश–पाश!

श्यामल–श्यामल कोमल कोमल!

लहराता सुरभित केश–पाश।

– – – – –

दुलरा दे ना, बहला दे ना,

यह तेरा शिशु जग है उदास।

रूपसि तेरा धन–केश–पाश।

प्रकृति का नायिका के रूप में चित्रण देखिए–

पुलकती आ बसंत रजनी।

तारकमय नव वेणी बंधन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि–वलय सित–धन अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।

4.3.5 अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत का अर्थ है प्रस्तुत को अधिक भावपूर्ण बनाने के लिए किसी अन्य वस्तु की कल्पना या सम्भावना करना। दूसरे शब्दों में इसे अलंकार–विधान भी कहते हैं। अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि को अपने वर्ण्य–विषय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उपमानों का सहारा लेता है। ये उपमान दो तरह के हैं– स्थूल और सूक्ष्म। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, अतः इसमें सूक्ष्म उपमानों का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही है।

करते करुणा–धन छाँह वहाँ, झुलसाता निदाध सा दाह नहीं;

मिलती शुचि आँसुओं की सरिता, मृगवारि का सिंधु अथाह नहीं;

हँसता अनुराग का इन्दु सदा, छलना की कुहु का निबाह नहीं;

फिरता अलि भूल कहाँ भटका, यह प्रेम के देश की राह नहीं।

इन पंक्तियों में प्रयुक्त सभी उपमान सूक्ष्म हैं।

महादेवी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग प्रायः रूप साम्य की दृष्टि से न होकर प्रभाव साम्य की दृष्टि से हुआ है। अलंकारों द्वारा भावाभिव्यंजना तथा सौंदर्यानुभूति अत्यन्त कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है। कतिपय अलंकारों के प्रयोग दृष्टव्य हैं–

उपमा –

विधु की चाँदी की थाली

मादक मकरंद भरी–सी।

विरोधमूलक

'नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी।

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।'

रूपक –

प्रकृति के अनेक रूपक उनके जीवन के साथ एकाकार होकर आए हैं

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।

वेदना में जन्म, करूणा में मिला आवास,

अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात!

जीवन विरह का जलजात!

रूपक अलंकार के लिए उनकी 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कविता भी उल्लेखनीय है।

उल्लेख –

उल्लेख अलंकार के लिए यह रचना देखने योग्य है–

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं, मुग्धा रश्मि अजान,

जिसे खींच लाते अस्थिर कर, कौतूहल के बाण!

अन्योक्ति

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो

अब असल बंदी युगों का

ले उड़ेगा शिथिल कारा

पंख पर वे सजल सपने तोल दो।

समासोक्ति–

चुभते ही तेरा अरून बान–

इन कनक रश्मियों में अथाह

लेता हिलोर तम सिंधु जाग,

बनती प्रवाल का मृदुल कूल

जो क्षितिज रेख थी कुहर – म्लान।

इस प्रकार अनेक प्रतीकों से महादेवी वर्मा ने अपने काव्य को सजाया है। अर्थालंकारों की ओर उनकी विशेष रूचि नहीं दिखाई देती है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकार यहाँ अपने आप आ गए हैं।

मात्र उपमान –

अपने कथन की स्थापना हेतु विविध उपमानों की योजना मात्र उपमान का अच्छा उदाहरण है –

4.3.6 छन्द विधान

भाषा की लय को एक निश्चित आकार देने के लिए लिये छंद का विधान होता है। महादेवी ने गीतों की रचना की है जो छंदोबद्ध हैं। उन्होंने परम्परागत छंदों से अलग हटकर नये प्रयोगों द्वारा गीतों को नए स्तर पर विकसित किया। भाषा तथा अलंकार–विधान की भाँति छंद भी काव्य का अनिवार्य उपकरण हैं। नयी संवेदना, नये कथन की भंगिमा के कारण छंद में भी परिवर्तन की आवश्यकता पहचानी गयी। महादेवी ने परम्परागत छंदों में तो परिवर्तन किया ही साथ ही नए छंदों का निर्माण भी हमें उनमें मिलता है। निराला ने मुक्त छंद की बात की है न कि छंद मुक्ति की। वे छंदों को परंपरागत नियमों से मुक्त करना चाहते थे, कविता को छंद विहीन करना उनका उद्‌देश्य नहीं था। कविता में भाव प्रमुख होते हैं। छंद उनका अनुगमन करते हैं। अतः तुकों से छंद को मुक्ति दिलाई गई और भावावेग प्रधान हो उठा। निराला ने भावों के अनुकूल छंदों के निर्माण में अपना कदम बढ़ाया। महादेवी ने हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है। इनके छंदों में पदों का विन्यास भाव लय के अनुरूप

हुआ है। महादेवी ने छायावाद के अन्य कवियों की तरह लोक प्रचलित गीतों को अपनाया। डॉ॰ नामवर सिंह के अनुसार उन्होंने सोलह मात्राओं वाले चरण के एक गीत को अपनाकर उसके एक चरण को टेक और उसके द्विगुणित रूप को अंतरा बनाकर बहुत से गीत लिखे जो अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

उदाहरणार्थ–

कौन तुम मेरे हृदय में?

कौन मेरी कसक मे नित मधुरता भरता अलक्षित?

कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित?

स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में!

कौन तुम मेरे हृदय में?

छायावाद की छंद –प्रवृत्ति का स्त्रोत लोक जीवन है। इससे बहुत कुछ उपकरण लेकर छायावादी कवियों ने तरह–तरह के छंद गढ़े। पुराने छंदों को पुनः जीवित करने का काम इन्होंने किया। मध्ययुग के सीपी छंद का प्रयोग महादेवी के काव्य में हुआ है–

रजनी ओढ़े जाती थी

झिलमिल तारों की जाली

उसके बिखरे वैभव पर

जब रोती थी उजियाली

4.3.7 चित्रात्मकता

कुशल कवयित्री होने के साथ–साथ महादेवी वर्मा कुशल चित्रकार भी हैं। 'यामा' तथा दीपशिखा' के चित्र स्वयं इन्होंने ही निर्मित किये हैं जो इनकी चित्रकला के उत्कृष्ट साक्षी हैं। ये केवल कुछ शब्दों के द्वारा ही सजीव चित्र चित्रित करने में अत्यन्त सिद्धहस्त है। वसंत रजनी का सजीव चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए–

'धीरे–धीरे उतर क्षितिज से, आ वसंत रजनी!

तारकमय नव–वेणी –बंधन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि–वलय सित घन अवगुंठन;

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे, चितवन से अपनी!

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से, आ वसंत रजनी।'

इन पंक्तियों में वसन्त रजनी के रूप में नवयौवना अल्हड़ नायिका का स्वरूप साकार हो उठा है। और–

'जब कपोल गुलाब पर शिशु प्रात के

सूखते नक्षत्र जल के बिंदु से,

रश्मियों की कनक–धारा में नहा

मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे।'

महादेवी के काव्य में चित्रात्मकता का विशेष स्थान है क्योंकि वे एक श्रेष्ठ चित्रकार भी थी। उन्होंने तूलिका यंत्रों के साथ–साथ शब्दों से भी चित्र बनाए। उनकी कृति दीपशिखा में प्रत्येक कविता की पृष्ठभूमि में एक चित्र है स्वयं उनका बनाया हुआ है। यामा में भी रेखाचित्र है। इन चित्रों में रंगों का विधान अत्यन्त कुशलता से किया गया है और काव्य, चित्र और संगीत की त्रिवेणी हैं। महादेवी कविताओं के साथ–साथ चित्रकला की भी साधाना करती उनके अधिकतर चित्र दीपशिखा में प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत से चित्रों को अपनी कविताओं रूप तथा बहुत से स्वतंत्र चित्र भी निर्मित किए। उनके चित्रों में भारतीय चित्रशैली की विशेषता और उसका प्रभाव है। अतः यह तो निश्चित है कि उनकी कविताओं में चित्रात्मकता के सौंदर्य का कारण उनकी चित्रकार प्रतिभा है उनके बिम्ब–विधान की कलात्मकता को हम इन पंक्तियों में देख सकते है–

मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर,

आज रही निशि दृग इंदीवर!

आज नयन आते क्यों भर–भर?

ज्योत्स्नापूर्ण मनोहर वातावरण में सरोवर का शांत जल दर्पण की तरह चमक रहा है। ऐसा लगता है मानों रूप युवती दर्पण को अपनी गोद में रखकर अपने कमलनेत्रों में काजल आँज रही है। इसी तरह संध्या भारतीय सूत्र से युक्त सुहागिन के रूप में चित्रित हुई है। प्रियतम रवि के पथ को गुलालों से लीपा गया है एवं ध्रुव तारे दीपक को जला दिया गया है। विहँसती संध्या का उल्लास उसके दृगों से स्वर्ण पराग के रूप में झर रहा है। कल्पना विधान द्वारा भारतीय नारी के अनुष्ठान मूर्तिमान हो उठे हैं–

गुलालों से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम में पहला दीप,

विहँसती संध्या भरी सुहाग

हगों से झरता स्वर्ण–पराग!

महादेवी की कविताओं में बिम्ब विधान को निम्नलिखित प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है–

चाक्षुष बिम्ब

रूप विधान कविता का महत्वपूर्ण अंग है अतः काव्य में नेत्र ग्राह्य बिम्बों की प्रधानता होती है। बिम्बों के चित्रण में कवि की कल्पना, संवेदनात्मकता और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का बहुत योगदान होता है। यहाँ चित्रण अभिधात्मक न होकर लक्षण और व्यंजना से युक्त होता है। 'वसंत रजनी' कविता में महादेवी ने वसंत रजनी को सोलह सिंगार किये हुए अभिसारिका नायिका के रूप में देखा है प्रकृति के विविध उपकरणों से सजी हुई, क्षितिज से उतरती हुई वसंत की रात उस रमणी की तरह लगती है जो शृंगार करके प्रिय से मिलने धीरे–धीरे चली आ रही है। चित्र की गत्यामकता और कमनीयता दर्शनीय है –

धीरे–धीरे उत्तर क्षितिज से

आ वसंत – रजनी

तारकमय नव वेणीबन्धन

शशि–फूल कर शशि का नूतन?

रश्मि–वलय सित धन–अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चितवन से अपनी।

पुलकती आ वसंत रजनी।

उनके चित्रों की वर्ण योजना लाजवाब है। रंगों का विधान और उनका संयोजन सौंदर्यबोध से युक्त है।

श्रव्य बिम्ब

ध्वनि बिम्ब का सुन्दर प्रयोग उनके काव्य में हमें मिलता है। नादात्मकता उनके काव्य की विशेषता है। ध्वन्यर्थव्यंजक शब्दों के प्रयोग से इन बिम्बों का निर्माण किया गया है जैसे–

मर्मर की सुमधुर नूपुर–ध्वनि,

अलि–गुंजित पक्षों की किंकिणि,

आस्वाद बिम्ब

छायावादी काव्य अनुभूति प्रधान है अतः छायावादी कवियों ने आस्वाद बिम्बों का प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर किया है मधुर तथा कटु तिक्त आदि स्वाद संबंधी प्रयोग प्रायः भावना तथा चिन्तन के धरातल पर ही आए हैं। महादेवी में भी आस्वाद बिम्बों का अभाव दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी की कविताओं में बिम्ब विधान कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में चित्रात्मकता की भूरि–भूरि प्रशंसा सभी आलोचकों ने की है। पंत के साथ उनकी चित्रात्मकता की तुलना करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र कहते हैं कि ''पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाई है फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी होती है। महादेवी की कला में रंग धुली तरलता है, जैसी पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।''

डॉ॰ नामवर सिंह उनके चित्र विधान की प्रशंसा करते हुए कहते हैं– ''उनकी कविताओं में जो चित्र आते हैं, वो रंगों से भरे हुए हैं। स्वयं अपने व्यक्तित्व को उपमा देते हुए उन्होंने कहा है – ''कमल दल पर किरण अंकित चित्र हूँ मैं''

भर पद गति में असल तरंगिणि

मर्मर, नूपुर ध्वनि, किंकिण, गुंजन आदि शब्दों में ध्वनि बिम्ब की योजना है

गंध बिम्ब

प्रस्तुत को संवेदनीय बनाने के लिए गंध का प्रायः अप्रस्तुत के रूप में उपयोग किया गया है जैसे–

आज ज्वाला से बरसता

क्यों मधुर घनसार सुरभित

यहाँ ज्वाला से घनसार बरस रहा है। इसी तरह चंदन, पराग, सुरभि का प्रयोग बार–बार इनकी कविताओं में हुआ है। चंदन का प्रयोग देखिए –

जिन प्राणों से लिपटा हो

पीड़ा सुरभित चंदन सी

पीड़ा मेरे मानस से

भीगे पट पर लिपटी सी

स्पर्श बिम्ब

स्पर्श चेतना कोमल पलय समीर, रेशम, मखमल, सुरभि, आदि के द्वारा व्यक्त हुई है। स्पर्श चेतना तथा कोमलता है। कल्पना के द्वारा हृदय पर पड़ने वाले इनके प्रभाव के माध्यम से हम स्पर्श का अनुभव करते है। इस दृष्टि से यह उदाहरण देखा जा सकता है –

रूपसि तेरा घन–केश–पाश !

श्यामल–श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश पाश!

इसी कविता में कवयित्री आगे लिखती है –

उच्छवसित वक्ष पर चंचल है

वक–पाँतों का अरविन्द हार,

तेरी विश्वासें छू भू को

बन–बन जाती मलयज बयार,

महादेवी वर्मा की चित्रात्मकता का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है–

''पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाव है,

अतः उनके चित्रों की रेखाऐं पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रंगधुली तरलता है जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।'

4.3.8 प्रतीकात्मकता

महादेवी के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग सौंदर्य बोध तथा कलात्मकता के साथ मिलता है। अज्ञेय के अनुसार महादेवी में भी प्रसाद की भाँति एक संकोच है और यही संकोच भाव उन्हें प्रतीकों के प्रयोग के लिए बाध्य करता है।

महादेवी वर्मा की कविता में प्रमुख प्रतीकः–

1. आध्यात्मिक प्रतीक

महादेवी की अनुभूति आध्यात्मिक है किन्तु अभिव्यक्ति लौकिक अतः अपनी अलौकिक अनुभूतियों को लौकिक प्रतीकों द्वारा वे बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त करती है। उदाहरणार्थ –

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

शिक्षित शिथिल तन थकित हुए कर,

स्पंदन भी भूला जाता उर,

मधुर कसक सा आज हृदय में

आन समाया कौन ?

आज क्यों तेरी वीणा मौन?

यहाँ वीणा जीवन का प्रतीक है।

2. प्रकृति संबंधी प्रतीक

प्रकृति के प्रति अत्यंत लगाव होने के कारण उनके अधिकतर प्रतीक प्रकृति से लिये गये हैं, जैसे–

घोर तम छाया चारों ओर

घटाएं घिर आई घनघोर

वेग मारूत का है प्रतिकूल

हिल जाते है पर्वत मूल

गरजता सागर बारम्बार

यहाँ अंधकार निराशा का प्रतीक है। घटाएं, पवन, सागर का गर्जन सब मन की भावनाएं हैं।

साधनात्मक प्रतीक

महादेवी का जीवन एक साधना के रूप में उनके काव्य में चित्रित हुआ है। उन्होंने ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है जिनसे साधना भाव को अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों का उल्लेख किया जा सकता है–

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

रजत शंख–घड़ियाल स्वर्ण वंशी–वीणा–स्वर,

गये आरती वेला को शत–शत लय से भर,

जब था कल कंठों का मेला,

विहंसे उपल तिमिर था खेला,

अब मंदिर में इष्ट अकेला,

इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !

यहाँ मंदिर मानव शरीर का, दीप आत्मा का, 'शंख', 'घड़ियाल' आदि–मनुष्य की विविध भावनाओं के तथा अजिर अंतर्मन का प्रतीक है।

परंपरागत प्रतीक

कवयित्री अपने काव्य में परंपरागत और सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत प्रयोग करती है। 'कमल' ऐसा ही प्रतीक है–

विरह का जलजात जीवन,

विरह का जलजात ।

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,

खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !

जीवन विरह का जलजात!

सौंदर्य परक प्रतीक

महादेवी ने सौंदर्य का चित्रण अनेक प्रकार से किया है। प्रकृति ने नारी रूप का सुंदर चित्र उनके काव्य में हमें मिलता है। निम्नलिखित उदाहरण में संध्या को पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया है जो मंगलकामना का दीप जला रही है–

गुलालों से रवि का पथ लीप

जला पश्चिम में पहला दीप,

विहँसती संध्या भरी सुहाग

हेगों से झरता स्वर्ण पराग।

वेदना परक प्रतीक

उनकी कविताओं में वेदना के मूल स्वर होने के कारण प्रायः ऐसे प्रतीक आए हैं जैसे –

मैं नीर भरी दुःख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा,

क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते

पलकों में निर्झरिणी मचली!

भावनात्मक प्रतीक

महादेवी के काव्य में विभिन्न भावनाओं की अभिव्यंजना सुंदरता से हुई है। भावनात्मक प्रतीक के उदाहरण स्वरूप से पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं कवयित्री कहती है–

सब बुझे दीपक जला यूँ !

घिर रहा तम, आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूँ !

यहाँ 'दीपक' आत्मा के प्रतीक रूप में चित्रित हुआ है। तम अज्ञानता का प्रतीक है।

आत्मचेतना संबंधी प्रतीक

छायावाद में प्रकृति चेतन सत्ता के रूप में चित्रित हुई हैं। आत्मचेतना संबंधी प्रतीकों में शलभ, वीणा, तार, सरिता आदि प्रमुख हैं।

महादेवी के प्रिय प्रतीक

महादेवी के काव्य में कुछ प्रतीक बहुत सुंदरता से अभिव्यक्त हुए हैं। वे उनकी कविता के मूल भावों के निहितार्थों को व्यक्त करने में सफल हुए है।

इनमें दीपक एवं बादल प्रमुख हैं –

दीपक

अंधकार में जलता हुआ दीपक बार–बार उनकी कविताओं में आता है। महादेवी को दीपक बहुत प्रिय है। उनके एक काव्य संग्रह का नाम भी है 'दीपशिखा'। अंधेरे में जलता हुआ दीपक, जल–जलकर औरों की राह रोशन

करता है परन्तु स्वयं दीपक तले अंधेरा ही रहता है। दीपक का स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने का यह गुण कवयित्री को बहुत भाया करता है। इसलिये उनकी कविता में तरह–तरह से बार–बार दीपक का उल्लेख आया है। वे कहती हैं–

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !

युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,

प्रियतम का पथ आलोकित कर !

महादेवी स्वप्नदृष्टा है। अपने स्वप्न को दूसरों की आंखों में पहुँचाना चाहती हैं। कहती है 'जब यह दीप थके तब आना' जब तक दीपक जल रहा है – सपने भी एक से दूसरे की आँखों से पलते जा रहे हैं। कहती हैं–

जल यह दीप थके तब आना

यह चंचल सपने भोले हैं,

दृगजल पर पाले मैंने मृदु,

पलकों पर तोले है

दे सौरभ से पंख इन्हें सब नयनों में पहुँचाना।

बादल

महादेवी को बादल बहुत प्रिय है। छायावादी कवियों को वर्षाऋतु तथा बादल से विशेष प्यार है। ग्रीष्म ऋतु में जब धरती तप उठती है, चारों ओर अग्नि की लपटों से व्यक्ति झुलस जाता है तब बादल छाते हैं और बरसकर सबको तृप्त कर देते हैं, धरती हरी–भरी हो उठती है, नवजीवन का संचार हो जाता है। महादेवी बादल से अपने को जोड़कर देखती है और अपना परिचय उसी रूप में देती है–

मैं नीर भरी दुख की बदली !

मै क्षितिज–भृकुटि पर घिर धूमिल,

चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज–कण पर जल–कण हो बरसी

नव जीवन–अंकुर बन निकली !

यद्यपि छायावादी काव्य में प्रतीकों का बाहुल्य है, तथापि महादेवी ने जिस प्रकार से अपने काव्य में प्रतीकों

की योजना की है, यह इनकी निजी विशेषता ही समझी जायेगी। बदली, सांध्यगगन, सरिता, दीप, सजल नयन, रात्रि, गगन, जलधारा, अन्धकार, ज्वाला पंकज, किरण, स्पप्न, विद्युत, प्रकाश आदि इनके प्रतीकों में प्रमुख हैं। इन प्रतीकों के अर्थ भी इनके अपने ही हैं। यथा –

''मैं नीर भरी दुख की बदली।'

यहाँ बदली का अर्थ है करुणा से परिप्लावित हृदय वाली।

'प्रिय ! सांध्यगगन मेरा जीवन !'

यहाँ सांध्यगगन का अर्थ है लौकिक के प्रति विराग और अलौकिक के प्रति अनुराग!

''मैं सरित विकल!

तेरी समाधि की सिद्धि अकल !'

यहाँ सरित (सरिता) का अर्थ है करुणा और प्रेम की वाहिका।

'दीप मेरे जल अकम्पित

घुल अचंचल।'

यहाँ दीप का अर्थ है साधना में तल्लीन आत्मा।

इस प्रकार गिने–चुने प्रतीकों को अपनाकर तथा उनमें नवीन अर्थ भरकर कवयित्री ने अपनी प्रतीक योजना को समृद्ध और भावों को प्रभावशाली बना लिया है।

4.4 सारांश

महादेवी अत्यन्त जागरूक कलकार हैं। छायावाद के कवियों में पन्त को छोड़कर महादेवी के समान ऐसा दूसरा कवि नहीं है जो अपनी काव्य–कला के प्रति इतना सजग रहा हो। एक आलोचक का यह कथन सत्य ही है कि महादेवी के काव्य में स्वर–तन्त्रियों पर गुम्फित कोमल पदावली रेशम पर मोती की तरह ढुलक जाती है। डॉ॰ नगेन्द्र ने इनकी काव्य–कला का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है– 'महादेवी' के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद के अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य–चिन्तन, तितली के पंखों और पंखुडियों से चुराई हुई कला और इन सबसे ऊपर स्वप्न सा पूरा हुआ एक वायवी वातावरण – ये सभी तत्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता।

4.5 कठिन शब्द

रागात्मकता
अंतर्मुखता
अभिव्यंजना
अमूर्त
अभिसारिका
नादात्मकता
कर्कश
रूढ़िबद्धता
उपहास
प्रवर्तित

4.6 अभ्यासार्थ शब्द

प्र०1. छायावादी काव्यधारा में महादेवी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०2. महादेवी की काव्य कला का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. महादेवी की काव्यभाषा का मूल्यांकन कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. महादेवी के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिये।

_____

_____

_____

प्र०5. महादेवी की प्रतीक योजना की सार्थकता पर विचार डालिये।

_____

_____

_____

प्र०6. महादेवी के काव्य में कल्पनाशीलता के वैशिष्ट्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०7. महादेवी के बिम्ब–विधान की कलात्मकता की समीक्षा कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०8. महादेवी की छंद–योजना की विशेषताँए बताइए।

_____

_____

_____

प्र०9. महादेवी के काव्य में अप्रस्तुत–विधान के सौन्दर्य का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी : नया मूल्यांकन– डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन लोअर बाज़ार, शिमला।
2. महादेवी– डॉ॰ दूधनाथ सिंह
3. महादेवी– डॉ॰ जगदीश गुप्त
4. महादेवी : चिन्तन व कला – डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान
5. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन – डॉ॰ विमल
6. छायावाद– सं॰ डॉ॰ उदयभानु सिंह
7. महादेवी– डॉ॰ शची रानी मुर्टू

.....

छायावादी काव्यधारा में निराला का स्थान

5.0 रूपरेखा
5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 छायावादी काव्यधारा में निराला का स्थान
5.4 कठिन शब्द
5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.6 संदर्भ ग्रंथ

5.1 उद्देश्य

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला विविधता के कवि हैं। समस्त छायावादी प्रवृत्तियाँ इनके काव्य में देखी जा सकती हैं। यहाँ निराला के काव्य में प्रकृति–चित्रण, दार्शनिकता तथा इनकी काव्य भाषा पर प्रकाश डालते हुए छायावाद में निराला का स्थान निर्धारित किया जाएगा। इनके संघर्षशील तथा उदात्त चरित्र पर प्रकाश डाला जाएगा।

5.2 प्रस्तावना

निराला का व्यक्तित्व प्रतिभा सम्पन्न रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में निराला विद्रोह, क्रान्ति और परिवर्तन के कवि माने जाते हैं। विरोध और संघर्ष के बावजूद इन्होंने अपनी काव्यधारा को नवीन मार्ग से प्रवाहित किया। निराला के कृतित्व के अनेक पहलू हैं। एक तरफ वे 'भिक्षुक' जैसी कारूणिक और सरल रचना लिखते हैं तो दूसरी ओर 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचना। एक तरफ 'बादल राग' कविता से क्रान्ति का आह्वान करते हैं तो दूसरी तरफ 'सरोज स्मृति' लिखकर सम्पूर्ण पाठक वर्ग को भाव विह्वल कर देते हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने उदात्ता की प्रतिष्ठा

की है। इनका व्यक्तिगत जीवन बहुत संघर्षशील और कारुणिक रहा है। इसका चित्रण इनकी अनेक रचनाओं में मिलता है। 'मुक्त छन्द' निराला की क्रान्तिकारी देन है जिसका भरपूर विरोध किया गया। इनकी रचनाएँ छापने से इनकार किया गया किन्तु निराला विरोधों के बावजूद डटे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण पाठक वर्ग ने मुक्त छन्द को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया।

निराला छायावाद के कवि माने जाते हैं। किन्तु इनकी कविताएँ काल–विशेष का अतिक्रमण करते हुए आगे निकल जाती हैं। यही इनकी उपलब्धि है।

5.3 छायावादी काव्यधारा में निराला का स्थान

'छायावाद' हिन्दी साहित्य की एक अत्यन्त समृद्ध, सौन्दर्यशील एवं सशक्त कलात्मक काव्यधारा है। इसकी समय सीमा 1918–36 ई. मानी जाती है। छायावाद का जन्म अपनी युगीन परिस्थितियों की देन है। अंग्रेजी काव्य से प्रभावित होकर उसने वह रूप धारण किया जो जीवन एवं सम–सामयिक चिन्तन को समेट कर चला है। डॉ. नगेन्द्र ने इसे स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह कहा है। द्विवेदी युग में साहित्य के क्षेत्र में उपदेशात्मकता और इतिवृतात्मकता का साम्राज्य छा गया था। तत्कालीन कवियों में इसके प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने इतिवृतात्मकता के स्थान पर हृदय के सूक्ष्म भावों का चित्रण किया। सौन्दर्य के भी इनके अपने मापदण्ड थे। छायावाद को खड़ी–बोली काव्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उदात्त रचनाएँ इसी कालावधि में लिखी गईं। छायावाद प्रसाद, पन्त, निराला एवं महादेवी वर्मा के संरक्षण एवं साहचर्य में खूब विकसित हुआ। इन कवियों की अपनी–अपनी विशेषतायें रही हैं। निराला छायावाद के महत्वपूर्ण कवि हैं। जब छायावाद पर विरोधियों द्वारा प्रहार होने लगे तो निराला सबसे पहले उसका पक्ष ग्रहण कर वाद–विवाद के क्षेत्र में उतरे। अपने अद्‌भुत धैर्य एवं ओज के साथ निराला ने छायावाद और उसके कवियों का पक्ष लेकर विरोधियों को मुँहतोड़ उत्तर दिया। निराला को एक शब्द में व्याख्यायित करना हो तो वह शब्द होकर 'संघर्ष'। निराला के काव्य में छायावाद की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

1) **वैयक्तिकता तथा आन्तरिक अनुभूति** :– छायावादी कवियों ने अपने काव्य में व्यक्तिगत हर्ष–विषाद को प्रधानता दी है। ये प्रवृत्ति निराला के काव्य में अधिकांश मिलती है। इन्होंने अपनी आन्तरिक अनुभूति को 'अपरा' की कई कविताओं में व्यक्त किया है। जूही की कली, हिन्दी के सुमनों के प्रति, मैं अकेला, राम की शक्ति पूजा, विकल वासना, स्नेह–निर्झर बह गया है, सरोज स्मृति आदि अनेक कविताओं में हमें निराला की वैयक्तिक भावना की सफल अभिव्यक्ति मिलती है।

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध

धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

वस्तुतः छायावादी कवियों की भावनाएँ यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दुखों के रोने–धोने तक ही सीमित होती तो उनमें उतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि न आ पाती। स्वयं निराला ने कहा है–

मैंने 'मैं' शैली अपनाई

देखा एक दुखी निज भाई।

दुख की छाया पड़ी हृदय में,

झट उमड़ वेदना आई।

2) **प्रकृति चित्रण** :– छायावादी कवियों ने प्रकृति के रम्य चित्र खींचे हैं। निराला ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को विस्मय विमुक्त नेत्रों से देखा है। इन्होंने प्रकृति के माध्यम से अपनी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण किया है। नारी सौन्दर्य तथा रहस्य भावना को चित्रित करने के लिए जहाँ प्रकृति को माध्यम रूप में स्वीकार किया है, वहाँ उसके सहज स्वाभाविक रूप की प्रतिष्ठा भी की है। मानवीकरण की प्रवृत्ति इनकी समस्त प्रकृतिपरक रचनाओं में परिलक्षित होती है–

दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही है।

यह सन्धया सुन्दरी परी सी

धीरे–धीरे–धीरे।

मानवीकरण के साथ–साथ प्रकृति के प्रति कवि के हृदय में कौतूहल भाव भी है। इसी भाव से प्रेरित होकर कवि यमुना से प्रश्न करता है–

यमुने, तेरी इन लहरों में

किन लहरों की आकुल तान।

पथिक प्रिया–सी जगा रही है

किस अतीत के गौरव गान।

3) **नारी सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण** :– छायावादी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण हुआ है। निराला ने भी श्रृंगार सौन्दर्य एवं प्रेम के लौकिक और अलौकिक दोनों ही पक्षों का रमणीय रूप देखा है। इनका नारी चित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म एवं शीलवान् है। उसमें नग्नता एवं स्थूलता नहीं आ पाई। प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति, नीति, रुढ़ियाँ और मिथ्य मान्यतायें एवं मर्यादाएँ मान्य नहीं है।

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।

भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।।

नारी चित्रण में भी स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा उसकी आत्मा के सौन्दर्य का चित्रण ही अधिक किया गया है। नारी के प्रति उनके हृदय में गहरी सहानुभूति है। इनके काव्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कहीं वह जीवन की सहचरी एवं प्रेयसी है और कहीं उन्हें वह प्रकृति में व्याप्त होकर अलौकिक भावों से अभिव्यक्त कस्ती हुई दिखाई देती है। कहीं वह उसके दिव्य दर्शन की झलक पाते हैं तो कहीं उसको लक्षित करके कवि प्रेमोन्माद कीअस्फुट मनोवृत्ति का चित्रण करते हैं।

(प्रिय) यामिनी जागी।

अलस पंकज दृग अरुण–मुख

तरूण अनुरागी।

खुले केश अशेष शोभा भर रहे

पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तर रहे।

4) **विद्रोह का स्वर एवं स्वच्छंदता** :– छायावादी कवि अंहवादी एवं व्यक्तिवादी है। फलतः उसने विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। यद्यपि उसने 'मैं' की शैली अपनाई किन्तु उसकी 'मैं' में सम्पूर्ण समाज सन्निहित है। निराला जी अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक विद्रोह एवं स्वच्छंदता के प्रेमी रहे हैं। वह तो जीवन–पर्यन्त विद्रोह एवं संघर्ष ही करते रहे। 'अपरा' की कई कविताओमें यह प्रवृत्ति मुखर है–

घन, गर्जन से भर दो वन,

तरू तरू पादप–पादप तन।

'सरोज स्मृति' में निराला की स्वच्छंदता प्रियता का स्वर स्पष्टतः मुखर है–

तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम

मैं सामाजिक योग के प्रथम

लग्न के पढूँगा स्वयं मन्त्र

यदि पंडित जी होंगे स्वतन्त्र।

5) **कल्पना :–** कवि–प्रतिभा का मुख्य रूप उसकी कल्पना में देखा जाता है। निराला के बिम्ब–विधान में सूक्ष्म–संश्लिष्ट सांगोपांग चित्रों की कारीगरी की अपेक्षा विराट चलचित्रों की सृष्टि अधिक देखने को मिलती है। उनकी उर्वर एवं गतिशील कल्पना किसी एक चित्र या दृश्य में रमकर उसकी सूक्ष्मता उद्‌घाटित करने में तल्लीन नहीं रहती, वरन् किसी वस्तु या दृश्य को देखकर वह समग्र संसार के भूत–वर्तमान, इतिहास और भूगोल का चक्कर लगाने लगती है। निराला की कल्पना के विधायक रूप के साथ–साथ उसका स्मृतिरूप भी अधिक सुगम और सरल है।

कहाँ छलकते अब वैसे ही, ब्रज नागरियों के गागर,

कहाँ भीगते अब वैसे ही– बाहु, उरोज, अधर, अंबर?

6) **रहस्यवादी भावना** :– अन्य छायावादी कवियों की भांति निराला के काव्य में भी रहस्य लोक के ऊर्ध्व शिखरों को छूने का प्रयास परिलक्षित होता है। उनकी रहस्य चेतना न तो उपनिषद तथा मध्ययुगीन सन्तों की भांति संकीर्णता से ग्रस्त रही है और न ही इनमें भावुकता ही रही है। वे रहस्यवादी के साथ–साथ दार्शनिक भी हैं। उन्होंने रहस्याकुल क्षणों में प्रकृति के भीतर कभी अपनी अलोक सुन्दरी प्रिया के रूप को चित्रित किया है तो कहीं सामान्य मानव अनुभूतियों का दैवीकरण। वे रहस्य–रचना के क्षणों में भी पूर्ण भावुक बने रहे हैं।

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग

मैं मृदुगति मलय समीर

तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष

मैं प्रकृति, प्रेम जंजीर

तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति

तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र

मैं सीता अचला भक्ति।।

7) **सामाजिक चेतना** :– छायावादी कवियों पर जहाँ कल्पना की अतिशयता एवं पलायनवादी दृष्टिकोण का आरोप लगाया जाता है, वहीं यह भी सत्य है कि उनमें सामाजिक चेतना का अभाव नहीं है। निराला जी भी उन्ही कवियों की भाँति देश में प्रत्येक व्यक्ति में स्वधर्म पालन की प्रवृत्ति एवं कर्मठता देखना चाहते हैं। उनकी सामाजिक चेतना किसी देशकाल की सीमा में बँधकर रहने वाली नहीं है। वह तो सारे विश्व के लिए कल्याणकारी हो रही है। इसी प्रकार की एक मंगल कामना देखिए–

जग को ज्योतिर्मय कर दो।

प्रिय कोमल पद गामिनी, मन्द उतर

जीवमृत तरूतृण गुल्मों की पृथ्वी पर

हँस हँस निज पथ आलोकित कर

नूतन जीवन भर।

एक और उदाहरण देखिए –

फाग का खेला रण बारह महीनों में

शेर की माँद में आया स्यार

जागो फिर एक बार।

यह सामाजिक भावना अन्य प्रगतिवादी कवियों की सामाजिक भावना से भिन्न है। इसमें कवि की कमनीयता समाप्त नहीं हुई।

8) **जीवन दर्शन** :– रवीन्द्र, टॉलस्टाय, गाँधी आदि महानुभावों ने विश्व मानव की वन्दना की और इस प्रकार एक नवीन मानवतावादी जीवन दर्शन का उद्‌भव और विकास हुआ। छायावादी कविता में मानव जीवन का अधिकाधिक मान है। यहाँ वर्ण–विषय, राजा–महाराज या देवता नहीं बल्कि सामान्य सामाजिक प्राणी ही हैं। निराला के काव्य में मानवतावादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। निराला की कविताओं में जीवन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण के अपनाये जाने पर भी मानव गौरव की प्रवृत्ति पूर्ण रूपेण परिलक्षित होती है–

तुम हो महान, तुम सदा हो महान,

है नश्वर यह दीन भाव,

कायरता, कामपरता।

ब्रह्मा हो तुम

पद रज भर भी नहीं

पूरा यह विश्व भार।।

'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में निराला ने मानव में छिपे हुए देवता का दर्शन किया है-

ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा

अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम।

निराला की करुणा विश्व व्यापी है।

सम्पूर्ण मानव वर्ग उनकी करुणा का आलम्बन है।

9) **निराशा, वेदना की प्रवृत्ति** :– वेदना, दुखवाद एवं करुणा की विवृत्ति की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। ये कवि वेदना एवं दुख को जीवन का सर्वस्व एवं उपकारक मानते हैं। प्रसाद की 'आँसू' के माध्यम से कवि की वेदना शतसहस्त्र धाराओं में प्रवाहित हुई है। महादेवी ने अपने आपको 'नीर भरी दुख की बदली' कहा है। निराला ने भी वेदना एवं निराशा को कई प्रकार से प्रकट किया है–

दिये हैं मैंने जगत को फूल फल,

किया है अपनी प्रभा में चकित–चल,

यह अनश्वर था सफल पल्लिवत तल

ठाट जीवन का वही जो ढह गया है।

10) **राष्ट्र–प्रेम** :– देश–प्रेम का स्वर निराला के काव्य में प्रारम्भ से ही मुखरित रहा है। 'जागो फिर एक बार' आदि कविताओं में देश प्रेम की भावना ने पर्याप्त विकास पाया है। कवि सम–सामयिक राजनीतिक चेतना को कला एवं दर्शन के माध्यम से व्यक्त करता है। राष्ट्रीय जागरण की कोख में पलने पनपने वाला स्वच्छंदतावादी छायावादी कवि रहस्यात्मकता और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को साथ–साथ लेकर चला है। सच तो यह है कि राष्ट्रीय जागरण में छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पदों पर भटकने से बचा लिया। निराला अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित हुए हैं–

जागो फिर एक बार!

सिंहनी की गोद से

छीनता रे शिशु कौन?

मौन भी क्या रहती वह

रहते प्राण? रे अज्ञान!

'महाराज शिवाजी का पत्र' में कवि आपसी फूट का वर्णन कर एकता की भावना जागृत करता है–

जितनी विरोधी शक्तियों से हम लड़ रहे हैं आपस में

सच मानो खर्च है यह, शक्तियों का व्यर्थ ही।

देश प्रेम की धारा निराला काव्य में आदि से अन्त तक इसी प्रकार अबाध गति से बहती रही।

11) **शिल्पगत विशेषताएँ** :– छायावादी कविता कल्पना प्रधान होने पर बहुत कुछ अस्पष्ट भाव–जगत से सम्बद्ध रही है। इस कारण उसका भाषा शिल्प भी उसी के अनुरूप कोमल और अस्पष्ट है।

(i) संस्कृतनिष्ठ कोमलकान्त पदावली :– छायावादी काव्यधारा में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। कोमल कल्पना के अनुरूप इसकी पदावली भी कोमकान्त है। 'अपरा' की कविताओं की भाषा में भी यह प्रवृत्ति मिलती है–

उस सलज्ज ज्योत्सना–सुहाग की

फेनिल शय्या पर सुकुमार,

उत्सुक, किस अभिसार निशा में,

गयी कौन स्वप्निल पर मार?

(ii) अप्रस्तुत विधान :– निराला ने अन्य छायावादी कवियों की भांति अपनी सूक्ष्म भावनाओं को अनेक रूपों में व्यक्त किया है, इसके लिए उन्होंने सूक्ष्म प्रतीकों का एवं लाक्षणिक शैली का प्रयोग किया है।

हुआ रूप दर्शन

जब कश्तविद्य तुम मिले

विद्या को दृगों के

मिला लावण्यज्यो मूर्ति को मोहकर

सोफालिका का शुभ्र हीरक सुमन–हार–शृंगार

शुचि दृष्टि मूक रस सृष्टि को।

(iii) संगीतात्मकता :– निराला को संगीत शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। अतः उनकी कविता में संगीतात्मकता का सुन्दर निर्वाह हुआ है। 'यमुना के प्रति' की ये पंक्तियाँ देखिए–

बता, कहाँ अब वह वंशीवट?

कहाँ गये नट नागर श्याम?

चल चरणों का व्याकुल पनघट

कहाँ आज वह वृन्दा धाम?

(iv) ध्वन्यात्मकता :– छायावादी कवियों ने अर्धानुरूप के विधान का विशेष आलम्बन लिया है। निराला ने भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें अर्थ देने के साथ–साथ वर्ण्य–वस्तु को नाद द्वारा मूर्तिमान करने कीशक्ति भी है–

अस्तु के विवश मारन्त प्रेरित,

पर्वत समीप आकर ज्योति स्थिति।

घन नीलालका दामिनी दुत ललना वह,

उन्मुक्त गुच्छ, चक्रांक पुच्छ

लखवर्तित कवि शिखि मन समुच्च।।

(v) आलंकारिकता :– निराला जी की कल्पना के साथ अनेक शब्दालंकार एवं अर्थालंकार स्वयं ही जुड़ जाते हैं। उनकी उक्तियों में बहुत ही स्वाभाविक रूप में उलझे हुए दिखाई देते हैं। संस्कृत निष्ठ कोमलकान्त पदावली में अनुप्रास की छटा को प्रायः सर्वत्र ही दिखाई दे जाती है।

अचल के चंचल छुद्र प्रपात।

इनमें मानवीकरण तथा विशेषण–विपर्यय के भी प्रयोग दिखाई देते हैं।

(vi) नवीन मुक्त छन्दों का प्रयोग :– निराला जी ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जिस छन्द को प्रमुखता चुना है, उसे मुक्त छन्द कहा जाता है। काव्य के कलापक्ष के अर्न्तगत हम मुक्त छन्द को निराला की सबसे बड़ी देन कह सकते हैं। निराला ने मुक्त छन्द का प्रयोग निर्भयतापूर्वक किया है। निराला के मतानुसार मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना। निराला के मुक्त छन्दों का तत्कालीन परम्परा प्रिय आचार्यों ने घोर विरोध किया। सम्पादनगण उनकी मुक्त छन्द में लिखित कविताओंको 'संक्षिप्त उत्तर' के साथ लौटा देते थे। उन्हीं के शब्दों में–

लिखता अबाध गति मुक्त छन्द

पर सम्पादक गण निरानन्द।

वापस कर देते पढ़ सत्वर,

दो एक पंक्ति में दे उत्तर।।

किन्तु निराला हताश नहीं हुए। वे निरन्तर अपने मुक्तपथ पर अग्रसर होते रहे। बाद में अनेक कवियों ने उनका अनुकरण किया और आज के अनेक प्रतिष्ठित कवि मुक्त छन्द को अपनाए हुए हैं। जुही की कली, पंचवटी प्रसंग, छत्रप्रति शिवाजी का पत्र, जागो फिर एक बार, शेफालिका आदि मुक्त छन्द में लिखी हुई कविताओं के उदाहरण हैं।

निराला में बहुवस्तु स्पर्शिणी प्रतिभा है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला ने किया है। 'उन्होंने' हिन्दी को नवीन भाव, नवीन भाषा एवं नवीन मुक्त छन्द प्रदान किये। हिन्दी के आधुनिक कवियों में उनका व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही और प्रखर है। उनको जीवन के विविध वैषम्यों एवं विरोधों का सामना करना पड़ा।

कवि पन्त ने निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन इस प्रकार किया।

''वह अदम्य शक्ति दुर्ग थे और हिन्दी ने उन्हें इसी रूप में श्रद्धावत, भावप्रणत होकर स्वीकार कर लिया। उन्होंने जो कुछ भी साहित्य को दिया, उसका छायावादी युग की श्रेष्ठ उपलब्धि के रूप में मूल्यांकन कर उसे अकुंठित समादर दिया, वह उनके व्यक्तित्व के प्रति दुर्निवार आकर्षण का और साथ ही उनके विरामहीन कटु संघर्षमय जीवन के लिए उन्मुक्त असंकुचित सहानुभूति का प्रमाण है।

अतः निराला ने नवीन दिशा और नवीन शक्ति देकर छायावाद को प्राणवान बनाया है।

5.4 कठिन शब्द

मुक्त पथ
लखवर्तित
स्वेच्छाचारी
शेफालिका
शतसहस्त्र
आलौकिक

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. छायावादी काव्यधारा में निराला का स्थान निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०2. निराला के काव्य की विशेषताँए लिखिए, जिन्होने छायावादी काव्यधारा में उन्हें विशेष स्थान दिलाया है।

_____

_____

_____

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. निराला की साहित्य साधना, रामविलास शर्मा
2. निराला, रामविलास शर्मा
3. महाप्राण निराला, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा
4. आत्महन्ता आस्था : निराला, दूधनाथ सिंह
5. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, द्वारिका प्रसाद सक्सेना
6. निराला, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
7. निराला और राग विराग, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
8. निराला और मुक्तिबोध, नन्दकिशोर नवल

.....

निराला का प्रकृति चित्रण

6.0 रूपरेखा
6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 निराला का प्रकृति चित्रण
6.4 कठिन शब्द
6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.6 संदर्भ ग्रंथ

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्यनोपरान्त आप निराला के काव्य में अभिव्यक्त प्रकृति के विविध रूपी चित्रण को समझ सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

मनुष्य प्रकृति की गोद में जन्म लेकर उसी की गोद में चिर विश्राम पाता है। वह कहीं भी चला जाय, धरती–आकाश, पर्वत–समुद्र, वन–उपवन, सरिता–निर्झर से अपने को घिरा हुआ पाता है। सूर्य–चन्द्र–नक्षत्र को वह उदित होते और डूबते देखता है। यह सब देखकर उसका प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।इसी संबंध को कवियों ने अपनी वाणी दी है।

6.3 निराला का प्रकृति चित्रण

निराला का प्रकृति–वर्णन ऋतुओं, वस्तुओं, प्रतीक–विधान एवं अलंकरण तक सीमित है। यह दूसरी बात है कि इस सीमित परिधि में जो कल्पनाएँ उन्होंने की हैं, वे बड़ी अनूठी और रम्य हैं। निराला का सबसे प्रिय विषय है बादल, सबसे प्रिय ऋतु है वर्षा। 'परिमल' में तो 'बादल–राग' छः कड़ियों में समाप्त हुआ ही है। 'नये पत्ते, 'बेला' और 'आराधना' में भी वर्षा और बादल पर रचनाएँ संगृहीत हैं। वर्षा पर सबसे अधिक रचनाएँ 'गीत–गुंज' में हैं– एक दर्जन से भी अधिक।

'बादलराग' की रचना इन्होंने बहुत मनोयोग से की है। निराला के काव्य और व्यक्तित्व के जो दो पक्ष हैं– कोमल और कठोर, उनकी अभिव्यक्ति इस अकेली रचना में होती है।

प्रथम अंश में ध्वन्यात्मक शब्दों की सहायता से बादलों की रोर की पुनर्सृष्टि की गई है। मेघों का जल सभी कहीं पर भर गया है और नद के समान कवि का हृदय भी हर्षाकुल है। दूसरे अंश में बादल से प्रभावित होनेवाले मूल कारण की व्याख्या कवि करता है। वह उसके निर्बंध स्वभाव पर मुग्ध है। उसके स्वभाव की स्वच्छंदता और उच्छृंखलता उसे प्रिय है। बादल सभी प्रकार की बाधाओं को तुच्छ सिद्ध करता हुआ आकाश में विचरण करता है। वह अनंत आकाश का सम्राट है। बादल अपनी रोर से कलियों और पत्तों को कंपित करता है। नीड़ों में बैठे पक्षियों को भयभीत करता है।

तीसरे अंश में कवि ने बादल की तुलना अर्जुन जैसे वीर से की है। इंद्रधनुष ही उसका धनु है, गगन की गड़गड़ाहट उसके रथ का घर्घर रव। वह संसार को जल का दान देकर उसकी वास्तविक सेवा करता है। चौथे अंश में बादल की कल्पना कवि ने प्रकृति के मुक्त आँगन में क्रीड़ा करने वाले एक चंचल बादल से की है। यह शिशु अंधकार में किलकारियाँ भर रहा है, विद्युत इसके घुँघराले बालों में झलक उत्पन्न कर रही है और किरणें उसके मुख को आलोकित कर जाती हैं। पाँचवे अंश में बादल को कार्य–कारण से परे उस निराकार ब्रह्मा के रूप में देखा गया है। जिसकी वंदना सूर्य–चन्द्र–तारे करते हैं और जो कवियों का प्रेरणास्त्रोत है। उसकी श्यामता नयन का वह अंजन है जो ज्ञान का प्रदाता है। छठे और अंतिम अंश में बादल के दुहरे व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है।

रचना की सारभूमि इसी में निहित है, इसी से यह सभी अंशों की अपेक्षा प्रभावशाली बन पड़ा है। बादल का घोर गर्जन जहाँ महलों में अपनी प्रियतमाओं के पास लेटे धनिकों के हृदय को भय से भर देता है, वहीं वह कृषकों को पुलकित भी करता है।

'बादल राग' के प्रत्येक अंश पर शीर्षक देकर यद्यपि कवि ने इन्हें अलग–अलग रचना माना है पर हम इसे एक लंबी कविता भी मान सकते हैं। प्रत्येक अंश में किसी विशेष गुण का उल्लेख है, पर ये गुण एक ही वस्तु के हैं। हम चाहें तो उसमें एक तारतम्य भी स्थापित कर सकते हैं।

'बादल राग' निराला की प्रसिद्ध रचनाओं में से है। इनके काव्य की विशेषताओं की जब चर्चा करनी होती है तो 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोजस्मृति' और 'कुकुरमुत्ता' के साथ इसका भी उल्लेख होता है। 'बादल' शीर्षक से इसी काल की एक रचना 'सुमित्रानंदन पंत' की है। दोनों दो दृष्टिकोणों से लिखी गयी हैं। निराला ने बादल के विशिष्ट रूप को देखा है, पंत ने सामान्य को। निराला ने एक ही इन्द्रधनुष को बीच में डालकर एक ओर उसे 'त्रिलोकजित' कहा है, दूसरी ओर 'मुक्त गान का गायन'। बादल की 'सिंधु का अश्रु', 'अनंत का शिशु', 'तरू का सुमन' आदि कहना काफी उर्वर कल्पना का द्योतक है।

अंगना–अंग से लिपटे भी

आतंक–अंक पर कांप रहे हैं

धनी वज्र–गर्जन से बादल!

त्रस्त नयन–मुख ठाँप रहे हैं।

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार।

'बेला' और 'नये पत्ते' में वर्षा पर जो रचनाएँ हैं उनमें प्रकृति का यथातथ्य चित्रण है। बात एकदम सीधे कह दी गयी है। कल्पना का सहारा नहीं लिया गया। कवि की दृष्टि विशेष रूप से गाँवों की ओर गयी है। वहाँ के वातावरण का चित्रण उसने कई प्रकार से किया है। बाहर दृष्टि पड़ती है तो ज्वार, अरहर, मूँग और धान के खेत दिखाई पड़ते हैं। युवक अखाड़े में कुश्ती लड़ रहे हैं, कहीं लड़कियाँ बारह मासा गा रही हैं। आँखों को सुखद लगने वाली हरियाली, शरीर को रोमांचित करने वाली पुरवाई और नदी, नालों और सरोवरों को भी कवि विस्मरण नहीं कर पाया है–

कानों में बातें बेला और जुही करती थीं

नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे।

'गीतगुंज' की रचनाओं में कवि का प्रकृति चित्रण के प्रति दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ है। अभिव्यक्ति कुछ अधिक काव्यात्मक हो गयी है। रचनाओं में संगीत–तत्व का प्रधान्य है। वर्षा को वह एक सुन्दर रमणी के रूप में देखने लगा है। मेघ एवं विद्युत अब उसे केश और कटाक्ष के रूप में दिखाई देने लगे हैं। वातावरण अधिक संश्लिष्ट और सजीव है। वर्षा का पूरा प्रभाव कवि के मानस में लक्षित होता है।

मालती खिली, कृष्ण मेघ की,

उग आये अंकुर जीवन,

धान, ज्वार, अरहर आ सन

बही पुनः गंध से पवन

पके आम की।

अन्य ऋतुओं में शरद, शिशिर और वसंत का वर्णन पाया गया है। ये वर्णन परिचयात्मक अधिक हैं। निराला ने यद्यपि सभी ऋतुओं का थोड़ा–बहुत वर्णन किया है लेकिन वर्षा के जैसे पूर्ण चित्र उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं, वैसे अन्य ऋतुओं के नहीं। अन्य ऋतुओं का उल्लेख उत्तरकालीन कृतियों में अधिक है।

ऋतु वर्णन की दृष्टि में इनकी रचना 'देवी सरस्वती' सफल है। इसमें ऋतुवर्णन के आधार पर कवि ने भारतीय जीवन विशेष रूप से ग्रामीण जीवन की झाँकी दिखाने का प्रयत्न किया है। रचना में प्रत्येक ऋतु में पायी जाने वाली वस्तुओं का हमारे जीवन से संबंध और फिर उस संबंध का हमारे जीवन पर प्रभाव अंकित किया गया है। इस प्रकार प्रकृति और जीवन के सौन्दर्य की एकाकारिता इस रचना में सबसे अधिक प्रतिफलित हुई है। प्राकृतिक तत्वों मेनिराला का जल के प्रति आकर्षण अधिक है। तरंग, प्रपात और नदी पर जो रचनाएँ पायी जाती हैं, वे इस आकर्षण की पुष्टि करती है। नदी, तरंग आदि का मानवीकरण कर कवि ने प्रकृति की वस्तुओं को स्त्री अथवा पुरुष का रूप तो प्रदान किया है, उनके अंतर की भावनाओं को भी पहचाना है। 'यमुना' रचना एक संबोधन गीत है जिसमें कवि यमुना से अनेक प्रश्न पूछता हुआ पौराणिक काल के एक वैभवमय युग का पुनर्निर्माण करता है। इस कविता में राधा–कृष्ण युग के वैभव, सौन्दर्य, विलास और संगीत–प्रेम को बार–बार स्मरण किया गया है। कवि इस स्मृति के साथ तादात्मय स्थापित करता है। पूरी रचना 'निराला' की अतिशय भावुकता की परिचायक है।

बता, कहाँ अब वह वंशीवट,

कहाँ गये नटनागर श्याम?

चल चरणों का व्याकुल पनघट

कहाँ आज वह वृन्दाधाम?

जल–तत्व के उपरान्त प्रकृति में दूसरा आकर्षण निराला का फूलों के प्रति है। कुछ फूलों पर उन्होंने स्वतंत्र रचनाएँ लिखी हैं जैसे जुही, शेफालिका, बेला, नर्गिस।

'जुही की कली' के माध्यम से इन्होंने प्रकृति के तत्वों के बीच उन्मुक्त प्रेम की स्थापना की है। इसमें जुही नारी है, पवन पुरुष। पवन यद्यपि परदेश में है, पर वह दूर खिली जुही के यौवन–सौन्दर्य से परिचित है। 'शेफालिका' भी प्रकृति के क्षेत्र में एक वासना प्रधान रचना है। 'वन–बेला' एक काव्य–कथा है। इसके प्रारंभ में कवि ने ग्रीष्म के ताप और आँधी का सुन्दर वर्णन किया है। इसमें लौकिक और आत्मिक मूल्यों के तुलनात्मक महत्व का प्रश्न उठया गया है। कवि का झुकाव आत्मिक मूल्यों की ओर है। 'नर्गिस' शीर्षक रचना भी तुलनात्मक मूल्यों का प्रश्न उठती है। इसमें धरती की नर्गिस से आकाश की ज्योत्सना की तुलना की गयी है। प्रश्न यह है कि जो आकाश से उतरकर

धरती पर छा जाए वह अधिक सुन्दर है अथवा जो धरती के अंधकार को चीरकर अपनी गंध से आकाश को परिपूरित कर दे वह? नर्गिस वसंत का फूल है और चाँदनी के समान ही श्वेत है। चारों रचनाएँ फूलों के वर्णन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

वर्ष का प्रथम

पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरूपम!

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से दो रम्य स्थानों– चित्रकूट और कैलाश का वर्णन निराला ने किया है। दोनो रचनाएँ 'नये–पत्ते' में संगृहीत हैं। चित्रकूट वाली रचना का शीर्षक है 'स्फटिक शिला' इस रचना में कवि अपने मित्र रामलाल के साथ चित्रकूट–दर्शन में पड़ते सभी दर्शनीय स्थानों तथा ध्यान आकर्षित करने वाली घटनाओं का वर्णन कवि ने किया है।

साँप बड़े ज़हरीले, टीलों पर रहते हैं,

बिच्छू, लकड़बग्घे, रीछ, चीते यहाँ रहते हैं।

पेड़ों पर बिचखोपड़।

चिरौंजी, बहेड़ा, हड़

और पेड़ बड़े–बड़े

जंगल के जंगल खड़े।

'कैलाश में भारत' निराला के मानसिक विकार को सिद्ध करने वाली रचना है। इस रचना में कवि का व्यतिक्रम है किन्तु प्रकृति–वर्णन बहुत ही रम्य है।

गिरि के पद–मूल में

कोटि–कोटि फूल खिले

रश्मि के रंगों के

मुख्यतः पीत–नील

अतिशय सौरभ उनमें।

निराला बहुत दिनों तक बंगाल में रहे थे। अतः प्रकृति–वर्णन में वहाँ का प्रभाव कहीं–कहीं लक्षित होता है। बंगाल की भूमि का आकर्षण कहीं–कहीं स्पष्ट रूप से भी अंकित है, जैसे 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' वाली रचना में।

स्वामी प्रेमानन्द का स्वागत एक बार महिषादल राज्य के कर्मचारी करते हैं– खुले मैदान में। उस अभिनन्दन में गँव की प्रजा भी सम्मिलित होती है। निराला उस वातावरण का चित्रण करते हुए लिखते हैं–

आमों की मंजरी पर

उतर चुका है वसंत

मंजु गुंज भौरों की

बौरों से आती हुई

शीत वायु ढो रही है।

निराला की कृतियों में प्रकृति के प्रति दुहरा आकर्षण पाया गया है। एक ऐसा जहाँ प्रकृति के तत्व एक–दूसेर के प्रति आकर्षित हैं जैसे रात–दिन के प्रति, जल पृथ्वी के प्रति, किरण लहर के प्रति, लहर कमल के प्रति। 'अनामिका' में यह प्रवृत्ति अधिक मुखर हो उठी है। कहीं–कहीं इस आकर्षण में ऐन्द्रियता का भी पुट पाया जाता है, जैसे चन्द्रमा और धरती के इस मिलन में–

''वक्ष पर धरा के जब

तिमिर का भार गुरू

पीड़ित करता है प्राण,

आते शशांक तब हृदय पर आप ही,

चुम्बन–मधु ज्योति का, अन्धकार हर लेता।

दूसरा आकर्षण है व्यक्ति का प्रकृति के प्रति। सृष्टि के आदिकाल से व्यक्ति व्यापक प्रकृति के सम्पर्क में रहा है। अतः यह आकर्षण कभी निशेष हो जायेगा, ऐसी तो कल्पना करना ही व्यर्थ है। वह झोंपड़ी से लेकर प्रासाद तक में रह चुका है फिर भी वह फूलों को प्यार करना नहीं भूला है। जीवन की व्यस्तता में भी वह सूर्योदय और सूर्यास्त के लिए तरसता है, प्रत्येक प्राकृतिक दृश्यों से प्रभावित होता है तथा उन्हें निहारना चाहता है।

मैं रहूँगा न गृह के भीतर,

जीवन में रे मृत्यु के विवर,

पृथ्वी का लहराता सुन्दर

दुकूल सस्वर आकर्षण भरकर

अपने दो काव्य ग्रन्थों में निराला ने प्रकृति के विशिष्ट रूपों को प्रस्तुत किया है। प्रकृति वहाँ एक उच्चतर उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयुक्त हुई है। इनमें 'तुलसीदास' तथा 'कुकुरमुत्ता' है।

'तुलसीदास' एक सांस्कृतिक रचना है। इसमें हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के टकराव की चर्चा है और इस अर्न्तद्वन्द्व को व्यक्त करने के लिए कवि ने अनेक रूपकों की सृष्टि की है। इसमें भारतवर्ष आकाश के समान है, हिन्दू–संस्कृति संध्याकालीन निष्प्रभ सूर्य के समान, मुस्लिम सभ्यता उगते चन्द्रमा जैसी। मुगलों के दल बादलों के समान घिरकर दुख के वज्र गिरा रहे हैं। अंधकार को घिरा देखकर हिन्दू–जाति के जीवन के जल में प्राणों के शतदल मुँद गए हैं। एक–दूसरे स्थान पर इन संस्कृतियों की तुलना सूर्य और राहु के रूप में भी की गयी है।

तुलसीदास जब चित्रकूट यात्रा को जाते हैं। वहाँ प्रकृति इस वस्तु–स्थिति का आभास उन्हें देती है। उन्हें लगता है सूर्य केवल जलाता है, वर्षा केवल कीच उत्पन्न करती है, आँधी केवल धूल बिछा जाती है। तुलसीदास जब घर लौटते हैं या यह कहिए कि उनकी अंतर्मुखी चेतना जब बाह्यमुखीं होती है तो सारी सृष्टि ही उन्हें परिवर्तित प्रतीत लगती है। प्रकृति का संदेश अपनी पत्नी के माध्यम से उन्हें मिल चुका है।

किसी को संदेह न रह जाय, इसी से निराला ने इस रचना के अंत में कवि की पत्नी की उपमा एक साथ सरस्वती और लक्ष्मी से की है। ये दोनों विद्या और वैभव की देवियाँ हैं। कृति का प्रारंभ संध्या के घिरते अंधकार से हुआ है और अन्त प्रभात के आलोक के साथ। निराला कृत तुलसीदास में प्रकृति के कल्याणकारी रूप की तुलना हम पंतजी के 'ज्योत्सना' नाटिका की प्रकृति से कर सकते हैं। दोनों की सांस्कृतिक दृष्टि अत्यंत आलोकमयी है।

प्रकृति वर्णन की दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' भी महत्वपूर्ण है। इसमें कुकुरमुत्ता की तुलना में गुलाब को हेयसिद्ध किया गया है। सौन्दर्य के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण एक दिन पंतजी का भी हो गया था। 'ताज' शीर्षक रचना इसका प्रमाण है।

कृति में नवाब के उद्यान का वर्णन है। वहाँ फूलों और फलों के नाम गिनाए गए हैं। इस प्रवृत्ति की तुलना पंतजी की ग्राम्य में रक्षित 'सौन्दर्यकला' शीर्षक रचना से की जा सकती है। कृति में निराला का वर्णन देखिए–

फलों के पौधे वहाँ–

लगे कैसे खुशनुमा

बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी

जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी

चंपा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास

गेंदा, गुलदाउदी, निवाड़ी, गंधराज–

फलों के पेड़ थे–

आम लीची, फालसें, संतरे के।

कुकुरमुत्ते के लिए कई उपमान ढूँढे गए हैं। कुकुरमुत्ता उन्हें एक साथ तराजू का पत्ता, मधानी, छाता, धनुष, सुदर्शनचक्र, हल, नाव का तला, पैराशूट और पिरेमिड दिखाई देता है। इस कृति में प्रकृति चित्रण अधिक परिष्कृत नहीं है, क्योंकि यह रचना व्यंग्य–परक रचना है, और यह प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखी गई है। यही कारण है कि अंत में कवि ने कुकुरमुत्ते का कबाब तैयार कर नवाब की लड़की को खिला दिया है।

निराला रूप में अरूप के कवि हैं। इसी से उनके प्रकृति–वर्णन में चित्रों की समष्टि का अभाव है। निराला ने प्रकृति चेतना का आरोप खूब किया है। प्रकृति के कोमल और कठोर–दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। प्रकृति के प्रति निराला के दृष्टिकोण के दो रूप प्रमुख हैं– प्रकृति का मानवीकरण या प्रकृति में परम शक्ति का दर्शन तथा प्रकृति को भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनाना। कहीं–कहीं इनकी प्रकृति आत्मबोध देने वाली है। मुक्ति का संदेश देने वाली है।

गरजे, हे मन्द वज्र स्वर,

थर्राये भूधर–भूधर।

झर झर झर झर धारा झर

पल्लव–पल्लव पर जीवन

निराला की प्रकृति सम्बन्धी अनुभूति में पुरुष की इसी पूर्णता ने उसे यदि एक ओर अनन्त अंचल शयना सप्राण सुन्दरी बनाया है और उसे अक्षय कमनीयता अनन्त गरिमा दी है, तो दूसरी ओर जीवन में आन्तरिक, ब्रह्या साम्य व सुधार के लिए उसे प्रेरणादायी प्रतिमा भी बना दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में प्रकृति का विशद् एवं व्यापक चित्रण मिलता है। साथ ही वे सब रूप भी उपलब्ध होते हैं जो आधुनिक कवियों ने प्रकृति के लिए अपनाये हैं।

6.4 कठिन शब्द

आत्मबोध
व्यतिक्रम
ज्योत्सना
परिष्कृता
विस्मरण
प्रगतिशील

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. 'प्रकृति चित्रण' निराला की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०2. निराला के काव्य में व्यक्त प्रकृति चित्रण को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

6.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. निराला की साहित्य साधना, रामविलास शर्मा
2. निराला, रामविलास शर्मा
3. महाप्राण निराला, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा
4. आत्महन्ता आस्था : निराला, दूधनाथ सिंह
5. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, द्वारिका प्रसाद सक्सेना
6. निराला, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
7. निराला और राग विराग, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
8. निराला और मुक्तिबोध, नन्दकिशोर नवल

.....

निराला की दार्शनिकता

7.0 रूपरेखा
7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 निराला की दार्शनिकता
7.4 कठिन शब्द
7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप निराला की दार्शनिकता से पूर्ण रूप से परिचित हो सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

निराला छायावाद के महत्वपूर्ण कवि हैं। निराला एक ऐसे केन्द्रबिन्दु का नाम है जिसमें भारतीय संस्कृति–वृत्त के नूतन और पुरातन सारे रूप, सारे रंग, सारे स्वर और सारे आकार तिरीभूत होते रहे हैं। वह युग का कवि नहीं है, युग–युग का कवि है। जिस कवि ने जूही की कली, प्रेयसी, अप्सरा, शेफालिका जैसी शुद्ध सात्विक सौन्दर्य की अवतारणा की, उसी कवि ने 'कुकुरमुत्ता' जैसे तीखी व्यंग्य प्रधान कविताएँ भी लिखीं।

7.3 निराला की दार्शनिकता

निराला विरोधाभासों के कवि हैं, विरोधों के नहीं। निराला काव्य के सारे रूपों में प्रच्छन्न रूप से एकबुद्धि प्रधान करूणा की अस्पष्ट रेखा दिखाई देती है। यह करूणा भावावेश का आप्लावन नहीं, क्षणिक ज्वार नहीं, आत्मसाध–नापरक विशाल भारतीय भावभूमि में प्रवाहमान धीर–शांत, गुरू–गम्भीर स्त्रोतस्विनी है। वे भारतीय संस्कृतिके व्याख्याता हैं। निराला के काव्य की भिन्न–भिन्न दिशाएँ ऊपर से असंतुलित, विरोधी जान पड़ती है किन्तु इनके मूल में एक ही स्वर है 'जीवन की सरस साधना का', 'ज्योर्तिमय जग' की आकांक्षा का। इनका सत्त प्रयास मुक्ति का रहा है, चाहे वह आत्मा की मुक्ति हो या छन्दों के बन्धन की मुक्ति।

निराला का काव्य मूलतः बुद्धिवादी है। बौद्धिक चिंतन क्रमशः भावना के धरातल पर उतरता गया है और दार्शनिकता अन्ततः आध्यात्मिक भक्ति के दारूण दैन्य में पर्यवसित हो गई है। निराला की समस्त दार्शनिक मान्यतओं, बौद्धिक चिंतनों के पीछे प्रत्यक्षत–अप्रत्यक्षत वेदान्त का स्वर ही प्रबल रहा है। अगर यह मान लिया जाए कि कवि का अनुभूत सत्य और भोगा हुआ व्यक्तित्व ही कविता में अभिव्यक्त होता है तो निराला के जीवन में वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रधान्य अस्वाभाविक नहीं। प्रारम्भिक जीवन के कटु अनुभवों एवं दारूण दुखों के पश्चात् वे सहज ही विवेकानन्द की ओर आकृष्ट हुए। निराला उस युग के प्रतिनिधि थे जो धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक नवोत्थान के चौराहे पर आ खड़ा हुआ था। उस समय कवि के भावुक हृदय को पहला पोषण मिला विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से और दूसरी ओर स्वामी रामकृष्ण की भाववादी अद्वैत साधना से बल मिला। धर्म इनके लिए आनन्द था और समाधि उनकी पूजा। विश्वास और जागृति उसके सोपान थे, उत्थान और मुक्ति चरम प्राप्ति।

निराला ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें 'कवि का हृदय और दार्शनिक का मस्तिष्क मिला है'। अतः जहाँ एक ओर उनमें भावना का तीव्रतम आवेश है वहीं दूसरी ओर चिंतनजन्य गहन दार्शनिक ज्ञान भी। कवि की विशेषता दोनों के अद्भुत समन्वय में है। कविता 'दर्शन के ठंडे हाथों का स्पर्श पाकर न जड़ बनी है न आँखोंसे ओझल हुई है।' काव्य ने दर्शन को स्निग्धता प्रदान की है और दर्शन ने काव्य को उदात्त बनाया है। 'निराला जान में कवि और अनजान में संत थे।' प्रारम्भ से ही उन्होंने अपनी इस चित्तवृत्ति के कारण धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन किया था। वेदान्त के चिन्तन ने ही उन्हें संसार के प्रति तीव्र विराग की दिशा दी थी। अतः उनकी कविताओं में चाहे वे उत्कट श्रृंगार की हों अथवा तीव्र विषाद की सर्वत्र एक तटस्थता दृष्टिगत होती है। जय हो अथवा पराजय, सुख हो अथवा दुख, आशा हो अथवा निराशा– जीवन की हर स्थिति का उत्तरदायी वह अन्तर्भावित ब्रह्मा है, वही अन्तिम सत्य है शेष सब मिथ्या है।

जीवन की विजय सब पराजय

चिर अतीत आशा, सुख, सब भय

सब तुम तुममें सब तन्मय।

निराला का यह आत्मविश्वास क्षुद्ध 'मैं' नहीं यह सबके प्रति विश्वास का प्रतीक हैं क्योंकि 'मैं' में ही 'तुम' और 'वह' समाविष्ट हैं। कवि जब 'मैं' की भूमि पर कल्याणमय ऊर्ध्वगामी ऊर्ज्वसित जीवन की कल्पना करता है तो परोक्ष रूप से उसमें सारी सृष्टि की कल्याण कामना समाहित होती है। 'प्रबन्ध प्रतिमा' में इन्होंने अपने इस'मैं' का स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

मतवाला के संपादन–काल में ही निराला रामकृष्ण मिशन के संपर्क में आए थे और वहीं विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से उनका परिचय हुआ था। निराला के काव्य में जो आस्था एवं विश्वास का स्वर सर्वत्र दिख पड़ता है उसके पीछे विवेकानन्द का वही व्यावहारिक वेदान्त है। निराला को हम शक्ति एवं पौरुष का कवि मानते हैं 'ऊर्ध्वगामी विकास' का कवि जानते हैं, क्योंकि निराला ने विवेकानन्द के इस विश्वास को वाणी दी थी। उनकी कविताओं में इसी विश्वास के कारण मानव के प्रति अटूट आस्था, सहृदयता और संवेदनशील तन्मयता है। अपने परवर्ती काव्य में उन्होंने युग की दलित संत्रस्त मानवता से करूणार्द्र होकर कटु व्यंग्य का संधान किया था, जिस आत्मा की र्स्वज्ञता, अनश्वरता, बंधनमुक्तता में कवि की आस्था थी इसकी ऐसी दशा देखकर कवि उद्बोधन करना चाहता है किन्तु सीधेसे नहीं उल्टा जाप करके। प्रबन्ध प्रतिमा में निराला कहते हैं– 'भयों सिद्ध करि उल्टा जापू' अगर किसी पर खप सक्ता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर।" विवेक के द्वारा ही उन्होंने प्रत्यक्ष जीवन के साथ आदर्शों का समन्वय करना चाहा था। वर्तमान जीवन की अनन्त के साथ एकरूपता स्थापित करनी चाही थी। इसी विवेक के कारण उन्होंने जीवन को कर्मठता का पाठ पढ़ाया था, बौद्धिकता के साथ पौरूष एवं शक्ति का समन्वय किया था।

मिला ज्ञान से जो धन

नहीं हुआ निश्चेतन,

बाँधो उससे जीवन

साधो पग–पग यह प्रतीक।

परिमल के प्रारंभिक प्रार्थना गीतों में कवि ने इस विवेक की विधायिका शक्ति का आह्वाहन किया है।

जग को ज्योतिमर्य कर दो

प्रथम प्रभात, बसन्त समीर।

विवेक द्वारा कवि बार–बार शक्ति प्राप्त कर आगे को बढ़ता है। यही विवेक उसे वेदान्तिक साम्यवाद की भूमि पर प्रतिष्ठित करता है और यही विवेक उसकी कविताओं में क्रान्ति के शंखनाद के रूप में उभरकर आया है।

'एक बार बस और नाच तू श्यामा'

निराला के काव्य में अद्वैत दर्शन ने एक अद्‌भुत आलौकिकता, रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता का स्वर भर दिया है। जिस ब्रह्मा ने इसे कर्मवाद का संदेश देकर जीवन की कटु विभिषिकाओं से जूझने का बल दिया है उसपरोक्ष ब्रह्मा के प्रति अनेक स्थलों पर कवि के हृदय की अपार जिज्ञासा के साथ एकनिष्ठ अनुराग की भी व्यंजना हुई है।

निराला में बौद्धिकता और रागात्मिकता के बीज समभावेन उपस्थित हैं। वेदान्त ने इन दोनों को पल्लवित किया है। बौद्धिकता ने विवेकानन्द से प्रभावित होकर व्यावहारिक वेदान्त के कर्मवादी सिद्धान्तों को जीवन में उताराऔर रागत्मिकता वृत्ति ने अद्वैतवादी रहस्यवाद के स्तर से चलती हुई अनुराग और करूणा की विस्तृत जलधारा में अपनी परिणति ढूँढ ली।

निराला के प्रेम–काव्य में प्रेम वस्तुतः अद्वैतवाद की एक अत्यन्त स्वाभाविक परिणति है। यही प्रेम परोक्ष के प्रति अपार जिज्ञासाओं का संधान करता है। यही प्रेम अपनी भाव–विह्‌वल व्याकुलता में दर्शन की भूमि पर रहस्यवाद का नियामक है और यही प्रेम निराला काव्य के साम्यवाद का पोषक है। इसी अर्थ में निराला के काव्य का मेरूदंड रहस्यवाद है। किन्तु निराला के रहस्यवाद में न तो मध्ययुगीन संतों की कुहेलिका है न रवीन्द्र की पिच्छल भाकुकता, यहाँ न प्रसाद की उत्कट बौद्धिकता है न महादेवी का द्वैतवादी दुःखदर्शन। इस रहस्यवाद में निर्गुण सन्तों की सधना और सगुणभक्तों के प्रेम का समन्वय है। उनमें समता है, रसात्मकता है पर पौरुष की अनुगूंज भी है। उसके विरह में भी मिलन का अलक्ष्य भाव है।

निराला के काव्य दर्शन का एक आयामविह्‌वल विनयपरक भक्ति का भी है। भक्ति का यह स्वर मध्ययुगीन संतों के अत्यधिक निकट है। क्रान्ति के गायक पौरुष के प्रतीक निराला का यह अंतिम पर्यवसान बड़ा ही विलक्षणहै। विवेकानन्द ने जिस कर्मवाद की प्रतिष्ठा की थी उसका अंतिम सोपान था 'भवनसाद' किन्तु निराला के काव्य दर्शन के अंतिम आयाम में है अवसादपूर्ण मनःस्थिति से उठी हुई करूणा, दया की साधना का स्वर। कवि ने आराधना मेंस्वयः जैसे स्वीकार कर लिया है–

अपना जपना रहा,

सत्य कल्पना रहा,

यौवन सपना रहा,

ज्ञान वही धो गया।

और कवि जैसे पश्चाताप करता हुआ कहता है–

ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया

सत्य की नित्य आराधना, अवमनन।

किन्तु सच तो यह है कि जीवन के आरम्भ में कवि ने जिस दर्शन को केवल बुद्धि के सहारे वरण किया था, उसी दर्शन को जीवन की अंतिम बेला में श्रद्धासमष्टि करके अपनी भूल का संशोधन कर लिया। वेदान्त का मूलाधार विश्वास, किन्तु श्रद्धा के अभाव में विश्वास मात्र एक छलना है। 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीत–गुंज' के गीतों में करूणा और भक्ति का जो स्वर है वह इस श्रद्धा–समन्वित विश्वास की ही अभिव्यक्ति है।

तुमसे लाग लगी जो मन की

जग की हुई वासना बासी।

अद्वैत–दर्शन का उत्कट बुद्धिवाद इस श्रद्धा–विश्वास और भक्ति की त्रिवेणी का अवगाहन कर सहज–सुलभ और सर्वसम्मत हो गया है। संसार की वह वासना, जिसे ज्ञान के हाथ निर्मल नहीं बना पाए थे, मुक्ति का वह इष्ट जो श्रद्धा के पाथेय के बिना सर्वदा आकाशकुसुम बना रहा था, अद्वैतवादी साम्य की वह आकांक्षा जो विश्वास के अभाव में अधूरी रह गई थी– इस नए भव्यात्मक स्वर से घुल–मिलकर सहज संवेद्य, सहजग्रह्य, सहज प्राप्त बन गई। इस स्वर ने ही कवि को वह आस्था दी जिसके सहारे वह संसार को उदात्त भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित कर सकता था।

अतः निराला के काव्य दर्शन के विश्लेषण पश्चात् कहा जा सकता है कि इसकी मूल वर्तनी धारा है वेदान्त और उसका परिष्कृत कर्मयोग। किन्तु इस विश्लेषण के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि किसी भी कवि के काव्य का दर्शन मात्र दार्शनिक तत्वों की ज्ञानवादी अभिव्यक्ति नहीं होती, वरन् उसकी अनुभूति का अंश होता है। दर्शन का कोरा ज्ञान चिंतन की भूमि पर भावनाओं का अंगी बनकर अभिव्यक्त होता है। निराला में बौद्धिकता सर्वोपरि है किन्तु भावना और कल्पना से निस्संग बौद्धिक दार्शनिकता उनके काव्य में विरल ही है। वे कवि दार्शनिक नहीं दार्शनिक कवि हैं।

यद्यपि काव्य का यह विकास प्रतिरूप ही है, पर निराला काव्य का सत्य यही है। माया मरीचिका की छलना, मृग तृष्णा का भटकाव और दुखमय संसार का हाहाकार इन सबकी प्रतिक्रियास्वरूप उपजी करूणा निराला की एकमात्र पूंजी थी। यह रामकृष्ण और विवेकानन्द के चिन्तन क्रम के प्रति आकृष्ट हुए, ब्रह्मा के सत्य रूप पर पड़े माया के आवरण को भेदकर, उन्होंने वेदान्त के मूलमंत्र 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' को भी ग्रहण किया था। अतः एक साथही उनमें करूणा की अंतः सलिला सरस्वती और दर्शन की गंभीर स्त्रोतस्विनी गंगा के दर्शन होते हैं। उनका यह द्विविध द्वन्द्व अनेक कविताओं में स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,

बाहर अचल धैर्य था उसके उस दुखमय जीवन का

भीतर ज्वाला धधक रही थी सिन्धु अनल की

बाहर यों दो बूँदे पर थीं शांत भाव में निश्चल–

विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थली की।

यह द्वन्द्व ही उनकी काव्य साधना के इस अस्वाभाविक प्रतीप पर्याय का कारण है। अनेक स्थलों पर वैदान्तिक ज्ञान एवं दैन्य भक्ति का समन्वय कर उन्होंने उन दोनों के पृथक् अस्तित्व को ही भ्रम सिद्ध कर दिया है।

7.4 कठिन शब्द

पुरातन
सात्विक
अन्तर्भावित
स्निगधता
विषाद

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. निराला के काव्य की दार्शनिकता पर विचार करें।

_____

_____

_____

प्र०2. निराला का काव्य किस दर्शन से प्रभावित है, सोदाहरण स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. निराला की साहित्य साधना, रामविलास शर्मा
2. निराला, रामविलास शर्मा
3. महाप्राण निराला, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा
4. आत्महन्ता आस्था : निराला, दूधनाथ सिंह
5. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, द्वारिका प्रसाद सक्सेना

6. निराला, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

7. निराला और राग विराग, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

8. निराला और मुक्तिबोध, नन्दकिशोर नवल

.....

निराला की काव्य कला

8.0 रूपरेखा
8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 निराला का प्रकृति चित्रण
8.4 निष्कर्ष
8.5 कठिन शब्द
8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.7 संदर्भ ग्रंथ

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्यनोपरान्त आप निराला की काव्यगत विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ माने जाते हैं। उन्होंने अपने विपुल सहित्य के द्वारा आधुनिक हिन्दी को समृद्ध बनाया और उसे गौरवान्वित किया। उनका जीवन स्वयं अपने आप में एक साहित्य है, जिसमें संघर्षों और वेदनाओं के ऐसे अनगिनत मार्मिक चित्रों की शृंखला सजी हुई है जिन्हें देखकर हम विचार करने

लगते हैं कि निराला का जीवन पहले पढ़े या उनका साहित्य। इनकी रचनाओं में तत्कालीन मानव की पीड़ा, परतन्त्रता एंव परवशता के प्रति उत्पन्न तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है विषमताओं, विभेदों एवं विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करने की तीव्र गर्जना सुनाई पड़ती है। ऐसा क्रान्तिकारी कवि एक और अपनी ओजस्वी कविता द्वारा ज्वालामुखी का विस्फोट भी करता है तो दूसरी ओर नारी के दिव्य सौन्दर्य की अलौकिक झाँकी प्रस्तुत करता हुआ प्रेम के मर्मस्पर्शी गीत भी गाता है।

8.3 निराला की काव्य भाषा

निराला जैसे अनेक क्षितिजों और दिगन्त भूमिकाओं के कवि को वाद की सीमा में बाँधना और भी कठिन है यद्यपि निराला छायावाद के प्रवर्तकों में परिगणित होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर परवर्ती अनेक समीक्षकों ने निराला के काव्य में स्वच्छन्दतावाद का वास्तविक प्रसार देखा है। निराला की काव्य सृष्टि के प्रथमोन्मेष क्षणसे लेकर जब तक 'मतवाला' में इनकी कविताएँ निकलती रही तब तक की अवधि को उनका प्रथम काव्य चरण कहा जा सकता है। प्रथम 'अनामिका' और 'परिमल' में प्राप्त सारी रचनाएँ इसी दौर की हैं। इस युग में निराला काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका स्वच्छन्द स्वरूप है। उन्होंने काव्य के बाह्या–शृंखला छन्दों को जोड़ने का उपक्रम किया और मुक्त छन्द में काव्य रचना की। कतिपय रचनाएँ छन्दोबद्ध भी हैं। इसी समय जहाँ 'बादल राग' और 'जागो फिर एक बार' जैसी रचनाएँ क्रान्ति का आह्वान करती हैं, वहीं अतीत का एक स्वर्णिम स्वप्न उपस्थित करने वाली 'यमुना के प्रति' भी है। इसी समय की निराला की 'तुम और मैं' कविता बहुख्यात है।

सन् 1927–28 से निराला के काव्य का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है जो 1938 तक चलता रहता है। इस अवधि में इन्होंने अधिकांश गीतों की सृष्टि की। 'गीतिका' के समस्त गीतों के अतिरिक्त कुछ स्फुट गीत भीहैं जो 'अनामिका' की द्वितीय आवृत्ति में प्रकाशित हुए हैं। गीत–सृष्टि की दृष्टि से निराला, विद्यापति, सूर और मीरा की श्रेणी में आते हैं। संगीत की दृष्टि से गीत–योजना के अनेक रूप होते हैं। कुछ गीत शास्त्रीय राग रागिनियों मेंबंधे रहते हैं। निराला के अनेक गीत इसी शास्त्रीय संगीत का अनुवर्तन करते हैं। दूसरा है एक स्वच्छन्द संगीत, जिसकी धारा आधुनिक काल में चल पड़ी है। इसमें कतिपय भारतीय लयों, पाश्चात्य लयों, ग्राम्य गीतों का समन्वय मिलता है। निराला जी के अनेक गीत इस स्वच्छन्द शैली में लिखे गए हैं। संगीत में अधिक निष्ठा होने के कारण निराला के गीतमूलतः गेय हैं।

निराला के काव्य विकास का तृतीय चरण सन 1938 से 1942 तक माना जा सकता है। इस समय एक शैली का प्रयोग कर दीर्घ आख्यानों की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं और साथ ही भिन्न प्रकार की हास्य और व्यंय की प्रवृत्ति का भी उन्मेष करते है।। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' इसी दौर की रचनाएँ हैं। इस काल के जिन व्यंग्यात्मक प्रयोगों में निराला सामजिक जीवन की बहुत सी विकृतियों पर आक्षेप करते हैं। उनमें भी उनका निजी असन्तोष झाँकता रहता है।

सन् 1942 के 1950 तक निराला के काव्य का चतुर्थ चरण है। इसमें प्रयोगों की बहुलता देखते हुए 'कुकुरमुत्ता' आदि लम्बी कविताएँ, 'मास्को डायलाग' छोटी कविता 'बेला' की गजलें इसी समय लिखी गई हैं। 'अनिमा' में व्यंग्यात्मक कविताएँ भी जुड़ी हुई हैं, परन्तु साथ ही कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ और महादेवी, विजयलक्ष्मी पण्डित पर कुछ प्रशस्तियाँ भी हैं। इन सभी रचनाओं की पद्धति प्रयोगात्मक है। आशय है कि कोई आश्रय लेकर कवि अभिव्यंजना को नया रंग देता है। वस्तु–निरूपण की शैली में उपेक्षाजन बाहुल्य है। 'निराला' का यह शैली प्रधान युग है।

'कुकुरमुत्ता' उनकी व्यंग्य रचनाओं के शीर्ष पर विद्यमान हैं। उनकी प्रयोगात्मक रचनाओं में कदाचित वह सबसे अधिक प्रचलित और सफल भी है। वह हिन्दी और उर्दू की बोलचाल की भाषा में व्यंग्यात्मक तौर पर लिखी गई है। शैली की दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' में टी.एस. इलियट के 'वेस्टलेण्ड की भाँति सन्दर्भ प्राचुर्य है।

'बेला' और 'नये पत्ते' में निराला की प्रयोगात्मक रचनाएँ हैं। 'बेला' में उन्होंने उर्दू शैली की गजलोंका प्रयोग किया है, किन्तु इसमें उनकी सफलता आंशिक ही है। 'नये पत्ते' इस दृष्टि से अधिक सफल कृति है। इसमें निराला के यथार्थोन्मुख प्रयोग अधिक स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। 'कुकुरमुत्ता' के हास्य और व्यंग्य में तो सामाजिकता साथ लगी हुई है किन्तु इसके आगे की रचनाओं में निराला का हास्य और व्यंग्य समाज निरपेक्ष, यहाँ तक कि वैयक्तिगत भी हो गया है। एक दृष्टान्त 'खजोहरा' में है। 'स्फटिक शिला' में निराला जी ने यथार्थवादी भूमिका को अपनाया है। इसमें चित्रकूट की प्रकृति तक पहुँचने का व्यंग्यात्मक आख्यान है। इसे प्रतिक्रियात्मक यथार्थवाद कह सकते हैं।

सन् 1950 से 61 तक निराला के काव्य का अन्तिम चरण है। यह उनके जीवन की एक अपेक्षाकृत दीर्घकालव्यापी सन्धया है। इन दिनों भी उन्होंने काव्य–सृष्टि की, जो एक नए सौन्दर्य और सात्विकता से मण्डित है। जीवन की इस सन्ध्या में वे काव्य और साहित्य प्रेमियों के मण्डल का अतिक्रमण करके निखिल जन के हृदय–सम्राट बने। इनके कवि रूप के बदले उनकी मानवीयता अधिक उभरकर सामने आई। जीवन के अन्तिम दौर में वे कवि सम्मेलनें में नहीं जाते थे। युवा कवियों को उन्होंने निरन्तर प्रोत्साहन दिया। निराला का काव्य जब अपने अन्तिम मोड़ पर पहुँचता है और वे आध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित होते हैं। इन दिनों वे पुनः गीत लिखने लगे। इन गीतों मेंयद्यपि सामाजिक जीवन की विशृंखला, अव्यवस्था और वैषम्य के संकेत भी मिलते हैं। परन्तु निरालाजी की केंद्रीय भावना किसी परम शक्ति का आश्रय चाहने की थी और उसी के प्रति समर्पित होकर उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं। इन गीतोमें निराला जी की भाषा भी आरम्भिक गीतों की भाषा से भिन्न हो गई है। वे सरल और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करने लगे थे। इस अवधि में कतिपय प्रयोगात्मक गीत भी उन्होंने लिखे। जिनमें उर्दू शैली की प्रमुखता है।

निराला की काव्य सृष्टि कला के प्रति उनके समर्पण का है। उनकी काव्य रचना उनके अदम्य साहस, उनकी जीवन अभिलाषाओं से सम्बन्धित है।

(1) निराला की काव्याभिव्यक्ति :–

निराला के काव्य में भाव की विविधता है। उसी प्रकार कला, पक्ष को लेकर भी निराला ने विविध प्रयोग किए हैं। अपने विचारों के अनुसार ही निराला ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को सर्वत्र भावों के अनुकूल डालने का प्रयत्न किया है। इसलिए इनकी भाषा में एकरूपता का सर्वधा अभाव दृष्टिगोचर होता है। निराला की भाषा को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(i) **प्रौढ़, सशक्त एवं ओजस्वी भाषा** :– निराला के काव्य में विशाल शब्द समूह के दर्शन होते हैं। निराला ने अपने प्रौढ़, सशक्त एवं ओजस्वी भाषा को वाणी प्रदान करने के लिए प्रायः ऐसी गुरूता, गम्भीरता एवं प्रौढ़ता से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें संस्कृत की दीर्घ समासान्त पदावली को सर्वाधिक महत्व तथा संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है।

रावण प्रहार–दुर्वार–विकल–वार–दल–बल,

मूर्छित सुग्रीवागंद–भीषण–गवाक्ष–गय–नल,

वारित सौमित्र भल्लपति–अगणित मल्ल रोध,

गार्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमान–केवल प्रबोध।

(ii) **माधुर्य गुण पूर्ण सौष्ठवमयी भाषा** :– जिन कविताओं में प्रेमी हृदय के मार्मिक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की है, ऐसी भाषा में सरलता एवं सुबोधता के साथ–साथ अपनी मधुरता में सर्वाधिक आकर्षणपूर्ण जानपड़ती है, इसमें लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता की अद्‌भुत छटा भी विद्यमान है।

सोती थी,

जाने कहो कैसे प्रिय–आगमन वह?

नायक ने चूमे कपोल,

डोल उठी वल्लरी की लड़ जैसे हिंडोल।

(iii) **सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा** :– जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उद्‌घाटन करने के लिए अथवा जीवन और जगत् का यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए सरल और व्यवहारिक भाषा का प्रयोग किया है। जिसमें अभिधा का प्रधान्य है –

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी

वह दीप–शिखा सी शान्त, भाव में लीन

वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा–सी,

वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन–

दलित भारत की ही विधवा है।

इसके अतिरिक्त 'भिक्षुक' तथा 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता में भी सरल भाषा का प्रयोग है।

(iv) **बोलचाल की भाषा :–** निराला की कविता में जहाँ सामाजिक अनाचार, शोषण एवं अन्य समाज विरोधी कार्यों के विरुद्ध कवि का आक्रोश, क्षोभ एवं व्यंग्य का निरूपण हुआ है, वहाँ कविता की भाषा सीधी सादी एवं बोलचाल के अधिक निकट है। इन कविताओं में हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी की मिश्रित पदावली के खुलकर दर्शन होते हैं।

अबे सुन बे गुलाब

भूल मत, गर पाई खुशबु, रंगो आब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल कर इतरा रहा, कैपीटलिस्ट।

इसका अन्य उदाहरण है–

कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर

टी.एस. इलियट ने जैसे दे मारा

पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर

कहा, ''कैसा लिख दिया संसार सारा''।

अतः निराला ने सर्वत्र भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। यही इनके भाषा प्रयोग की साम्थर्य है।

2) **चित्रमयता :–** निराला ने कविता के लिए 'चित्रभाषा' और सस्वर शब्दों की आवश्यकता का अनुभव किया और सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये। 'वसन्तागमन' कविता में सारी प्रकृति वसन्त के आने पर हर्षित है, लताएँ प्रसूनों से भर जाती हैं, मलयानिल मन्द–मन्द गति से बहता है। 'गीतिका' में ऐसे शब्द–चित्र भरे पड़े हैं–

अलस पग मग में ठगी–सी रह गई।

श्याम, तन, भर बँधा यौवन,

नत–नयन, प्रिय कर्म रत मन।

3) **ध्वन्यात्मकता :–** निराला के काव्य में ध्वनि–चित्रण या नाद व्यंजना के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं–

गरजो, हे मन्द वज्र स्वर,

थर्राये भूधर–भूधर,

झर झर झर झर धारा झर,

पल्लव पल्लव पर जीवन।

4) **प्रतीक योजना :–** निराला ने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य सिन्धु से अपने सामान्य प्रतीकों का चयन करके विविध रूपों एवं भावों की अभिव्यक्ति की है। इनकी अभिव्यक्ति में रूप एवं भाव–दोनों के प्रतीक विद्यमान हैं–

निर्दय उस नायक ने

निपट निठुराई की

कि झोकों की झड़ियों से

सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,

मसल दिए गोरे कपोल गोल

चौंक पड़ी युवती–

कवि ने 'जुही की कली' को नव परिणीता का प्रतीक बनाकर स्पर्श लाज के लजाई हुई नवोढ़ा नायिका का अत्यन्त चित्ताकर्षक सौन्दर्य चित्र अंकित किया है। कवि ने 'बादल' को कई प्रतीकों के रूप में चुना है। 'रास्ते के फूल' नामक कविता में मुरझाये हुए दलित कुसुम को एक अनाथ एवं असहाय व्यक्ति के प्रतीक रूप में अंकित किया है, ऐसे ही कवि ने 'शेफालिका' नामक कविता में शेफालिका को यौवन उभार से मदमत्त उस तरूण युवती के प्रतीक के रूप में अंकित किया है। सारांश यह है कि कवि निराला ने विविध प्रतीकों के द्वारा अपनी हृदयस्थ अनुभूतियों के बड़े ही मनोहारी चित्र अंकित किये हैं।

5) **अलंकार योजना :–** निराला ने अपनी अलंकार योजना द्वारा भावों, विचारों, पदार्थों एवं घटनाओं के ऐसे मनोहर, मादक एवं मार्मिक चित्र अंकित किए हैं जो अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ–साथ गतिशीलता एवं प्रभावोत्पादकता में अन्य कवियों के चित्रण से अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं।

(i) शब्दालंकार :– निराला की कविता में अनुप्रास का विशेषकर छेकानुप्रास एवं वृत्यानुप्रास का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है।

कम्पित उनके करूण करों में,

तारक–तारों की सी तान

बता बता अपने अतीत का,

क्या तू भी गाती है गान।

(ii) **अर्थालंकार :–** निराला ने उपमा, रूपक आदि अलंकारों का बहुत ही सफल प्रयोग किया है। उपमा अलंकार इनका सर्वाधिक प्रिय जान पड़ता है।

किसके गूढ़ मर्म में निश्चित,

शशि सा सुख ज्योत्स्ना सा गात।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण छायावादी कवियों ने मानवीकरण विशेषण–विपर्यय, अमूर्तीकरण आदि अलंकार को ग्रहण किया और उनके सफल प्रयोग किए। निराला के काव्य में भी इनके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

(iii) **मानवीकरण :–** निराला ने प्रकृति की वस्तुओं पर चेतना का आरोप करके उनमें मानवीय भावनाओं का संस्पर्श प्राप्त किया है। जुही की कली सन्धया सुन्दरी, बादल, प्रपात के प्रति, तरंगों के प्रति आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं–

चौंक पड़ी युवती,

चकित चितवन निज चारों ओर फेर,

हेर प्यारे को सेज पास,

नम्रमुखी हँसी, खिली,

खेल रंग प्यारे संग।

विशेषण विपर्यय :–

यमुने। तेरी इन लहरों में

किन अधरों की आकुल तान।

पथिक प्रिया सी जगा रहे

उस अतीत के गौरव गान।

6) **छन्द योजना :–** निराला न केवल भाव एवं विचारों की दृष्टि से विद्रोही कवि कहलाते हैं, अपितु छन्द की दृष्टि से भी निराला एक क्रान्तिकारी एवं विद्रोही कवि हैं। इन्होंने छन्द सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं में अमूलचूल परिवर्तन करके मुक्त छन्द की पद्धत्ति का श्रीगणेश किया। हिन्दी साहित्य को उनकी यह मौलिक देन है। 'मुक्त छन्द' की महत्ता के सम्बन्ध में निराला ने लिखा है– ''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना।''

परिमल की भूमिका में निराला ने 'मुक्त छन्द' के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उनके कथन का सारांश यह है कि मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। इस कथन के समर्थन में निराला ने 'जुही की कली' की आरम्भिक पंक्तियाँ उद्धृत की है और विवेचना प्रस्तुत की है–

विजय वन वल्लरी पर

सोती थी सुहाग भरी

स्नेह स्वप्न मग्न अमर कोमल तनु–तरूणी

जुही की कली

युग बन्द किए–शिथिल पत्रांक में।

निराला तो काव्य का विकास छन्द के बंधन से मुक्ति की स्थिति में मानते हैं, जबकि अन्य लोग इसके घोर विरोधी थे। इसे रबड़ छन्द, केंचुआ छन्द तक कहा गया। किन्तु कवि इससे हतोत्साहित नहीं हुआ। निराला ने छन्दबद्ध रचनाओं का सृजन भी किया है–

एक दिन थम जायेगा रोदन

तुम्हारे प्रेम अंचल में।

लिपट स्मृति बन जायेंगी कुछ कन–

कनक सोंचे नयन–जल में।

शुद्ध गौड़ी रीति, पुरुषा वृत्ति और ओज गुण की पक्षवली की महाप्राणता यदि कोई देखना चाहता है तो उसे महाप्राण निराला जी की 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक कविता को अवश्य पढ़ना चाहिए।

राघव लाघव– रावण वारण– गत युग्म प्रहर,

उद्धत लंकापति– मर्दित कपिदल– बल विस्तर,

अनिमेष राम विश्वजिद् दिव्य शरभण्ग भाव।

निराला जी ने अपनी कविताओं में व्याकरण सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोग भी किये हैं। ऐसे प्रयोग कर्त्ता और क्रिया के रूपों में विशेष सम्बन्ध रखते हैं। बंग साहित्य से प्रभावित होने के कारण निराला ने अपनी कविताओं में संगीत को कवित्वमय और कवित्व को संगीतमय बनाने की चेष्टा की है। इसलिए कहीं–कहीं अर्थ–बाधकता वाले पद–विन्यास की परवाह उन्होंने नहीं की। बंगला भाषा के प्रभाव के कारण ही उनकी कविताओं में क्रिया पदों का प्राय लोप पाया जाता है। उनके वाक्य–विन्यास पर बंग–शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

बंगला भाषा के कुछ शब्द बड़े सुन्दर ढंग से निराला जी ने अपनी कविताओं में प्रयुक्त किये हैं। फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को तो वे बड़े विचार के साथ ही प्रयुक्त करते हैं। लोक में प्रचलित उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों को बहिष्कृत करने की वृत्ति निराला की नहीं थी। लार्ड, कैमरा, रेल, ग्रेड, कारवेट, ड्रम, गिटार आदि अंग्रेजी शब्द तथा दगदगा, गैर, हंक, ज्यादा, बाग, खूब, होशियार, तस्वीर आदि उर्दू शब्द मिलते हैं।

7) **द्विरूक्ति :–** शब्द चित्र प्रस्तुत करने का ध्वन्नशीलता उत्पन्न करने के लिए तो द्विरूक्ति का प्रयोग होता ही है, पर अतिरिक्त बल प्रदान करने के लिए भी द्विरूक्ति का प्रयोग होता है। निराला के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगत होती है। जैसे–

बार बार गर्जन। सुन सुन घोर वज्र हुंकार।

वह संध्या सुन्दरीपरी की

धीरे धीरे धीरे।

महाकवि निराला की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है जिसे संगीत के मंच पर सुशोभित करके श्रृंगार की मधुरिमा और वीर का ओज प्रदान किया है। इसीलिए खड़ीबोली की कर्कशता निराला की कविताओं में नहीं है। उनकी रचनाओं में जहाँ बौद्धिक तत्व अधिक हैं वहाँ भाषा जटिल और दुरूह हो गई है, किन्तु हृदय–तत्व की प्रधानता प्राप्त करके वह संस्कृत की ललित एवं कोमलकांत पदावली की स्वरलहरी से अभिमण्डित भी हो गई है। अतः इनकी भाषा शैली मौलिक एवं भावभिव्यंजना में सर्वथा सफल है।

8.4 निष्कर्ष

निराला का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों से मुठभेड़ करता नवनिर्माण का सन्देश देता है। मानवतावाद इनका मुख्य स्वर है। कला के प्रति सर्म्पण इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। इन्होंने मनुष्यता पर विश्वास नहीं खोया, कविता को वैयक्तिकता या खण्डदर्शन की भूमिका पर ले जाकर आत्मविच्छेद नहीं किया। इनकी काव्य साधना में आन्तिरक द्वन्द्व की स्थिति निरंतर गतिशील रही है। निराला के साहित्य की उदात्तता के कारण ही इन्हें 'महाप्राण' कहा जाता है जो आने वाले कवियों के लिए प्रेरणास्त्रोत रहेगा।

8.5 कठिन शब्द

उदात्त
ऊर्ध्वगामी
ऊर्ज्वसित
कुहेलिका
ओजस्वी
पुलकित
स्त्रोतस्विनी
आप्लावन
विधायिका
रागत्मिकता
विभिषिका

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. निराला के काव्य में 'मुक्त छन्द' पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. शिल्प की दृष्टि से निराला ने काव्य में क्या प्रयोग किए हैं?

_____

_____

_____

8.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. निराला की साहित्य साधना, रामविलास शर्मा
2. निराला, रामविलास शर्मा
3. महाप्राण निराला, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा

4. आत्महन्ता आस्था : निराला, दूधनाथ सिंह

5. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, द्वारिका प्रसाद सक्सेना

6. निराला, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

7. निराला और राग विराग, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

8. निराला और मुक्तिबोध, नन्दकिशोर नवल

.....

छायावादी काव्य में पंत का स्थान

9.0 रूपरेखा
9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 छायावादी काव्यधारा में पंत का स्थान
9.3.1 प्रकृति पर चेतना का आरोप
9.3.2 उदात्त शृंगार–भावना
9.3.3 कौतूहल की प्रवृत्ति
9.3.4 मानवतावादी जीवन दृष्टि
9.3.5 लाक्षणिकता
9.3.6 अभिनय शिल्प–विधान
9.4 निष्कर्ष
9.5 कठिन शब्द
9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.7 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे।

– छायावादी काव्यधारा में पंत का क्या स्थान रहा है।

– छायावादी काव्यधारा में मानवतावादी दृष्टिकोण को समझेंगे।

– छायावाद में लाक्षणिकता का क्या स्थान है, इस सन्दर्भ में जानेंगे।

– छायावाद कवियों में पंत का क्या योगदान है और वह अन्य कवियों से किस तरह भिन्न है।

9.2 प्रस्तावना

छायावाद के अन्तर्गत वह हिन्दी आती है, जो बीसवीं शती के तीसरे दशक में अपने उत्कर्ष पर थी। इसमें काव्यगत, नैतिक, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति तीखा विद्रोह केन्द्र में था। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि है– प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा। प्रसाद कवि होने के साथ ही एक गंभीर विचारक और दार्शनिक थे। उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति 'कामायनी' में हुई है। बुद्धि और श्रद्धा के माध्यम से 'मनु' के व्यक्तित्व की व्याख्या इसमें की गई है। छायावादी कवियों में निराला सबसे अधिक विद्रोही व्यक्तित्व के थे। इनकी 'कुकुरमुत्ता' उनकी परिवर्तित काव्य दृष्टि को स्पष्ट करती है। सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में जाने जाते हैं। प्रकृति और नारी सौंदर्यका जो सूक्ष्म अंकन पंत ने किया है वह विशिष्ट है। महादेवी वर्मा वेदना और पीड़ा की कवयित्री हैं। इनके काव्य में वेदना की गहराई प्रकट हुई है। इनके रहस्यवाद की अपनी विशिष्टता है।

9.3 छायावादी काव्यधारा में पंत का स्थान

द्विवेदी युग में काव्य–भाषा तो परिष्कृत हुई किन्तु स्थूल तत्वों की निरन्तर अभिवृद्धि होने के कारण वह अपना लालित्य एवं माधुर्य खो बैठी। नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता ने हिन्दी–कविता को जड़ सा बना दिया। युवा पीढ़ी ने इस जड़ता के प्रति आक्रोश व्यक्त किया। फलतः द्विवेदी युगीन स्थूलता के कठोर धरातल को भेद कर कुछ मधुर स्त्रोत फूट पड़े। इन स्त्रोतों ने परस्पर मिलकर एक धारा का निर्माण किया जो वर्षों तक रसिकों को रस–मग्न करती रही। वे मधुर स्त्रोत थे– प्रसाद, पन्त और निराला आदि तथा वह मधुर धारा थी– छायावादी काव्य–धारा।

छायावाद की परिभाषा प्रस्तुत करने वालों के दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग स्वयं छायावादी कवियों का है एवं दूसरा आलोचकों का। जयशंकर 'प्रसाद' के शब्दों में "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश–विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।" सुमित्रानंदन पंत ने छायावाद को पाश्चात्य रोमांटिसिज्म से प्रभावित काव्य माना है। महादेवी वर्मा छायावाद की उत्पत्ति स्थूल की प्रतिक्रिया में मानते हुए लिखती है कि प्रकृति में चेतन का आरोप, सूक्ष्म सौन्दर्य–सत्ता का उद्घाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्मविसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।

समीक्षकों ने छायावाद को भिन्न–भिन्न बिन्दुओं से देखा है। कुछ आलोचकों ने छायावाद को रहस्यवाद के निकट की वस्तु माना है। गंगा प्रसाद पाण्डेय के शब्दों में ''विश्व की किसी वस्तु में अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना तथा उसका आरोप करना ही छायावाद है।'' डॉ. रामकुमार वर्मा भी छायावाद और रहस्यवाद में अभेद स्थापित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को 'शैली विशेष' के रूप में ग्रहण किया है। वैसे वे भी छायावाद रहस्यवाद को एक ही मानते हैं। उनके अनुसार ''छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।''

डॉ. देवराज ने छायावाद को 'आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह' माना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी–दर्शन के आधार पर लिखा है– ''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्मका विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है। परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वावधान में हुआ था।'' डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद में अध्यात्म चेतना का निषेध करते हुए लिख है आज से अनेक वर्ष पूर्व ''युग की उद्‌बुद्ध चेतना ने, बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर, जो आत्मबद्ध अर्न्तमुखी साधना प्रारम्भ की वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई।.... उसके मूल में स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह था।'' डॉ. नामवर सिंह के अनुसार.... सामान्य रूप से भावोच्छवास–प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना वैभव वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जो देशकाल और वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील–युगों की आशा–आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भावधारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' पड़ा।''

इस प्रकार छायावाद के अन्तर्गत वह हिन्दी कविता आती है, जो बीसवीं शती के तीसरे दशक में अपने उत्कर्ष पर थी। इसमें काव्यगत, नैतिक, सामाजिक, रूढ़ियों के प्रति तीखा विद्रोह भाव केन्द्र में था। इसमें परम्परा के स्वरूप तत्वों को अंगीकार करते हुए एक नये किस्म की अभिव्यंजना पद्धति गढ़ी गयी। इस काव्य प्रवृत्ति के कवियों का अहंभाव घुला–मिला था। डॉ. नामवरसिंह के शब्दों में ''जिसके आरंभिक आत्मप्रसाद में समाज के सामन्ती मूल्यों की पुष्टि थी, उसके अन्तिम अहंभाव में सम्पूर्ण समाज, विशेषतः अपने ही मध्यवर्गीय समाज की व्यवसायिकता से घबराहट का तीव्र असन्तोष है और निराशा है। जिसकी आरम्भिक एकांतप्रियता में शक्ति थी, उसकी अन्तिम असामाजिकता में निराशा है।''

छायावाद के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर आलोचकों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल ने मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय की कुछ रचनाओं में इसके प्रारम्भिक रूप का दर्शन किया है। डॉ. विनय मोहन शर्मा और डॉ. प्रभाकर माचवे, माखनलाल चतुर्वेदी को पहला छायावादी कवि मानते हैं, जबकि जानकी वल्लभ शास्त्री पन्त जी को यह गौरव देते हैं। इलाचन्द्र जोशी के अनुसार : ''पहला छायाकवि उसे माना जाना चाहिए, जिसने छायावादी युग की निश्चित स्थापना हो जाने के पूर्व ही से एकाध छुटपुट कविता नहीं, बल्कि निरन्तर ऐसी कवितायें लिखीं, जिसमें छायावादी प्रवृत्ति के बीज असंदिग्ध रूप से विद्यमान थे।'' इस दृष्टि से विचार करने पर 'प्रसाद' पहले छायावादी कवि सिद्ध होते हैं।इस काव्यधारा का प्रवर्त्तन प्रसाद, पंत, निराला आदि ने समवेत रूप में किया है। छायावाद की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं –

9.3.1 प्रकृति पर चेतना का आरोप

9.3.2 उदात्त श्रृंगार–भावना

9.3.3 कौतूहल की प्रवृत्ति

9.3.4 मानवतावादी जीवन दृष्टि

9.3.5 लाक्षणिकता

9.3.6 अभिनव शिल्प–विधान।

इन विशेषताओं के संदर्भ में श्री पंत के काव्य की परीक्षा करने के साथ उनके अन्य सहयोगियों की परीक्षा करने के साथ उनकी तुलना की जा सकती है। तब छायावादी काव्यधारा में उनके योगदान का निर्धारण भी किया जा सकता है।

9.3.1. प्रकृति पर चेतना का आरोप

छायावादी कवियों ने प्रकृति को कभी विस्मय से तो कभी आशा के साथ निहारा है। लेकिन प्रकृति का मानवीकरण सर्वत्र मिलता है। प्रकृति कवि के दुख–सुख की सहचारी बनकर आयी है। प्रसाद जी अगर सिंधु सेज पर धरावधू अब। तनिक संकुचित बैठी सी' में धरती का मानवीकरण करते हैं, उसे वधू के रूप में देखते हैं, तो निराला भी संध्या को सुंदरी के रूप में चित्रित करते हैं। यह संयोग है कि पंत ने भी संध्या को एक रूपसी के रूप में देखा और व्यक्त किया है–

''कहो, तुम रूपसि कौन?

व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप''

निराला संध्या–सुंदरी के सौन्दर्य से मुग्ध हैं, लेकिन पंत के मन में उसके प्रति कौतूहल का भाव है जो इस कविता को विशिष्ट बनाता है। पंत की सभी प्रसिद्ध कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण है। 'बादल', 'मौन निमंत्रण', 'नौका विहार' आदि में प्रकृति पर चेतना के आरोप से सौन्दर्य बढ़ गया है। गंगा का यह बिम्ब उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं–

''तापस बाला गंगा निर्मल

शशि से दीपित मृदु करतल

लहरें उर पर कोमल कुंतल''

उनकी प्रसिद्ध कविता 'छाया' का एक मनोरम चित्र इस प्रकार है–

''अरे कौन तुम दमयंती सी

इस तरू के नीचे सोई

क्या तुमको भी छोड़ गया

अलि! नल सा निष्ठुर कोई''

यहाँ 'छाया' को दमयंती का रूप देकर कवि एक पुराख्यान को दुहराने के साथ–साथ नारी के प्रति पुरुष की कठोरता को भी उभार सका है। इसी प्रकार के बहुत से प्रकृति चित्र उन्हें प्रकृति के सुकुमार कवि माने जाते हैं। वस्तुतः पंत प्रकृति का सुकुमार कवि मानने के लिए विवश करते हैं। वस्तुतः पंत प्रकृति के जितने करीब रहे है अन्य कोई छायावादी कवि नहीं रहा। कौसानी में जन्मे पंत जी को आँख खोलते ही प्राकृतिक सुषमा का वैभव दिखायी दिया है। 'रश्मि बंध' की भूमिका में उनका कथन है– ''मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे, जिन्होंने मुझकवि कर्म करने की प्रेरणा दी थी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों को पालने की रचना पर्वत प्रदेश की दिगन्त व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की थी.... प्रकृति–निरीक्षण और प्रकृति–प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गए हैं....।'' इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि प्रकृति से पंत जी का गहरा नैकटय और आत्मीयता रही है। यही कारण है कि उनका प्रकृति–चित्रण अन्य छायावादी कवियों की तुलना में अधिक व्यापक और संवेदनात्मक है। उन्होंने प्रकृति को कविताओं में रचा ही नहीं है, जिया भी है।

9.3.2. उदात्त शृंगार–भावना

छायावादी कवियों ने रीतिकालीन कवियों के शृंगार वर्णन की मांसलता और अलंकरण–प्रधानता का उल्लेख किया है और द्विवेदी युगीन नैतिकता से बोझिल उस युग के शृंगार–चित्रण के सामान्य और स्थूल हो जाने की चर्चा भी की है। छायावादी कवियों ने नारी का जो शृंगार वर्णन किया है उसमें एक नयापन है, सूक्ष्म अनुभूतियां हैं। उनके वर्णन में सौन्दर्य के प्रति विस्मय का भाव अधिक है, उपभोग की भावना नहीं है। इसके अतिरिक्त वे शृंगार को पावन अनुभूतियों से जोड़कर उदात्त बना देते हैं। पंत जी का यह चित्रण इस प्रकार का उत्कृष्ट उदाहरण है–

एक वीणा की मृदु झंकार

कहाँ सुन्दरता का पार

तुम्हें किस दृष्टि में सुकमारि

दिखाऊं मैं साकार

तुम्हारे छूने में या प्राण

संग में पावन गंगा–स्नान

तुम्हारी वाणी में कल्याणी

त्रिवेणी की लहरों का गान

छायावादी कवियों ने वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। प्रसाद कृत 'आँसू' और महादेवी की प्रायः सभी रचनाओं में अकृत्रिम दुख व्यक्त हुआ है। अलौकिकता का आभास कराता हुआ महादेवी वर्मा का विप्रलंभ–शृंगर सभी छायावादी कवियों के शृंगार वर्णन पर भारी पड़ता है। प्रसाद के वियोग वर्णन में भी पर्याप्त मर्मस्पर्शिता है लेकिन महादेवी के लिए तो विरह एक गहरी साधना है– 'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात' पंत जी के प्रारम्भिक काव्य में संयोग और वियोग दोनों प्रकार के चित्र मिलते हैं। 'ग्रंथि' एवं 'आंसू की बालिका' इस संदर्भ में विशेष पठनीय हैं। विरहानुभूति का एक उदाहरण इस प्रकार है–

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को

थाम ले अब, हृदय इस आह्वान को

त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं

प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को इन पंक्तियों में अनुभूति की सच्चाई, तरलता और उदातत्ता दृष्टव्य है।

9.3.3. कौतूहल की प्रवृत्ति

कतिपय, आलोचक यह मानते हैं कि छायावाद में 'रहस्यवाद' के तत्व भी समाहित हैं। डॉ. गंगा प्रसाद पाण्डेय और डॉ. गुलाब राय के मत इसी प्रकार के हैं। वस्तुतः महादेवी जी और निराला जी की कुछ कविताओं में रहस्यवाद मिलता है, अन्यथा प्रकृति को लेकर कौतूहल और जिज्ञासा का भाव ही छायावाद में अधिक मिलता है। विशेष रूप से पंत जी की कविता में तो कौतूहल और जिज्ञासा का भाव बहुत मिलता है। 'प्रथम रश्मि' कविता में 'कहाँ, कैसे, 'किसने' आदि पदों का बहुत प्रयोग मिलता है–

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि

तूने कैसे पहचाना ?

कहाँ, कहाँ हे बाल विंहगिनी

पाया तूने यह गाना।

'मौन–निमंत्रण' कविता में भी यह जिज्ञासा का भाव मुख्य रूप में है–

1. उठा तब लहरों से कर कौन

न जाने मुझे बुलाता कौन

2. न जाने, अलस पलक दल कौन

खोल देता तब मेरे मौन

लेकिन पंत–काव्य में यह भाव धीरे–धीरे कम होता गया है और प्रकृति तथा जीवन के प्रति रागतत्व गम्भीर हो गया है। लेकिन 'हिमाद्रि' कविता में यह विस्मय–भावना दृष्टिगोचर होती है–

बाल्य भावना मेरी तुममें

जड़ीभूत आनंद तंरगित

तुम्हें देख सौन्दर्य–साधना

महाश्चर्य से मेरी विस्मित

इस तरह के उदाहरणों को देखते हुए किसी आध्यात्मिक प्रेरणा के स्थित होने से इन्कार किया गया है। स्वयं सुमित्रानंदन पंत ने छायावाद में रहस्यानुभूति का सर्वथा निषेध किया है।

9.3.4. मानवतावादी जीवन दृष्टि

प्रायः छायावाद को व्यक्तिवादी, पलायनवादी और निराशावादी कहने की भूल की जाती है। ऐसे हैं नहीं। प्रसाद ने 'कामायनी' में कहलाया है– 'हार बैठे जीवन का दांव/ जीतते मरकर जिसको वीर'। प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद का मनना है कि जीवन के दाँव को मरकर भी जीतने की प्रेरणा देने वाला काव्य पलायन का पोषक नहीं हो सकता है। वस्तुतः सभी छायावादी कवियों के मन में मानव–कल्याण की भावना, निहित रही है। 'राम की शक्ति पूजा', 'कामायनी' पल्लव, ग्राम्या आदि कृतियाँ साक्षी के तौर पर पढ़ी जा सकती हैं। सुमित्रानंदन पंत ने अपने मानवतावादी होने की चर्चा बार–बार की है। वे 'छायावादी' में 'मानवीय जागरण' के उदात्त संदेश को लक्ष्य करते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता 'ताज' मेउन्हें क्षोभ है कि जीवित मनुष्य का अनादर हो रहा है, शवों की पूजा हो रही है–

स्फटिक सौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन।

नग्न क्षुधातुर, वासविहीन रहे जीवित जन।

'विनय' कविता में भी वे मानव मात्र के कल्याण की कामना करते हैं–

हो धरणि जनों की, जगत स्वर्ग–जीवन का घर,

नव मानव को दो प्रभु! नव मानवता का वर

वे इस बात के लिए भी चिंतित हैं कि पूर्व और पश्चिम जैसे विभाजनों से मानव के कल्याण में बाधा न पड़े-

वृधा पूर्व पश्चिम का दिग् भ्रम

मानवता को करे न खंडित

यही कारण है कि पंत जी के मानवतावाद में औपनिषदीय चिंतन से लेकर गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अरविन्द–दर्शन तक का समावेश है। उन्हें जहाँ से मानव के लिए उपयोगी विचार मिले हैं, उन्होंने सहर्ष लिए हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि संसार में सकारात्मक बदलाव आएगा और नयी मानवता जन्म लेगी–

जन्म ले रही नव मानवता

स्वप्न–द्वार फिर खोल ऊषा ने

स्वर्ण विभा बरसाई

पंत की 'दुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' और 'गा कोकिल बरसा पावक कण' आदि पंक्तियों से स्पष्ट होता है, कि वे मनुष्य के हित में आवश्यक होने पर 'ध्वंस' को स्वीकार करने में नहीं हिचकते हैं। पंत–काव्य मेंछायावाद का मानवतावाद बहुत प्रौढ़ रूप में मिलता है।

9.3.5. लाक्षणिकता

छायावादी कवियों ने स्थूल और इतिवृत्तात्मक भाषा के विरोध में सूक्ष्म और सांकेतिक शब्दावली को अधिक महत्व दिया है। हर बात को लाक्षणिक मुद्रा में कहने का मानों इन कवियों का स्वभाव सा बन गया है। वे कम शब्दों में अधिक अर्थ भरकर साहित्य के आस्वादन में पाठक की भागीदारी भी चाहते हैं। जहाँ भी रूपक और मानवीकरण की योजना है, वहाँ लक्षणा स्वतः उपस्थित हो गयी है। प्रसाद की पंक्तियाँ हैं–

मानव जीवन वेदी पर

परिणय हो विरह मिलन का

सुख दुख दोनों नाचेंगे।

है खेल आंख और मन का

सुमित्रानंदन पंत के काव्य में लक्षणा का बहुविधा और सधा हुआ प्रयोग मिलता है। विशेषता यह है कि प्रायः मुख्य अर्थ तक पहुँचने में कोई बाधा नहीं होती। उदाहरण के लिए 'परिवर्तन' कविता की ये पंक्तियाँ–

मृदुल होठों का हिमजल हास

उड़ा जाता निश्वास समीर

सरल भौहों का शरदाकाश

घेर लेते घन, घिर गंभीर

इसमें सुख की स्थितियों के दुख में परिवर्तित हो जाने की त्रासदी वक्रता के साथ अंकित हुई है। इसी प्रकार का एक उदाहरण 'मौन निमंत्रण' कविता से देख सकते हैं–

कनक छाया में जबकि सकाल

खोलती कालिका उर के द्वार

सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल

तड़प बन जाते हैं गुंजार

पंत जी ने अपने मानवतावादी चिंतन की अभिव्यक्ति में लक्षणा का पूरा सहयोग लिया है।

9.3.6. अभिनव शिल्प–विधान

छायावाद में सब कुछ नवीनता लिए हुए है। निराला जी ने लिखा था– 'नव गीत नव लय ताल छंद नव।' सचमुच छायावाद में नए छंदों, नये अलंकारों और नए बिम्बों ने अभिव्यंजना पक्ष को अभिनव बना दिया है। छंद के बारे में पंत जी ने स्वयं उद्घोष किया था– 'खुल गए छंद के बंध/प्रास के रजतपाश'। छायावादी कवियों ने एकओर हरिगीतिका, सवैया, कवित्त आदि छंदों को छोड़ दूसरे छंदों को अपनाया, दूसरी ओर मुक्त छंद में लिखेनका श्री गणेश किया। छायावाद में नए–पुराने एवं सूक्ष्म उपमानों के प्रयोग से कविता के सौन्दर्य को बढ़ाया गया है। कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं–

1. खिला हो ज्यों बिजली का फूल– जयशंकर प्रसाद
2. इष्ट देव के मंदिर में वह पूजा सी– सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
3. मैं नीर भरी दुख की बदली– महादेवी वर्मा

सुमित्रानंदन पंत के काव्य में भी विषय–वस्तु के अनुरूप नए–नए उपमानों के प्रयोग उपलब्ध हैं। कुछ उदाहरण–

1. विधुर उर के से मृदु उद्गार
2. सरल भौहों का शरदाकाश
3. अहे वासुकि सहस्त्र फन

छायावादी कविता 'मानवीकरण और विश्लेषण–विपर्यय' के लिए विशेष जानी जाती है। ये नए अलंकार पंत जी की कविता में सफलतापूर्वक समायोजित हुए हैं। मानवीकरण तो प्रायः हर चर्चित कविता की जान है। उदाहरणार्थ–

चुका लेता दुख कल ही ब्याज

काल को नहीं किसी की लाज (परिवर्तन)

इसी तरह विशेषण–विपर्यय के कुछ अच्छे उदाहरण पंत–काव्य में देख सकते हैं–

कल्पना में है कसकती वेदना

अश्रु में जीता सिसकता गान है

पंत को प्रसाद, निराला आदि की तुलना में अच्छा शिल्पी माना गया है। वे कविता के 'शिल्प' पक्ष पर अधिक मेहनत करते थे। इसलिए भाषा संबंधी असावधानियाँ और शिथिल अप्रस्तुत विधान या प्रभावहीन बिम्बात्मकता उनके काव्य में प्रायः नहीं मिलती है। अपनी संवेदना और सोच को आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने को लेकर सुमित्रानन्दन पंत बराबर सचेत रहे हैं।

9.4 निष्कर्ष

'रश्मिबंध' की भूमिका को पंत जी का दावा है– ''छायावाद से पहले खड़ी बोली का काव्य भाव भाषा दृष्टि से निर्धन ही रहा। छायावाद ने उसमें अंगड़ाई लेकर जागते हुए भारतीय चैतन्य का भाव–वैभव भरा। इस वैभव–वृद्धि में पंत जी का योगदान बहुत स्तुत्य है।'' 'पल्लव' की भूमिका लिखकर पंत जी ने छायावाद के सरोकारों और काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को स्पष्ट करने में ऐतिहासिक योगदान दिया है। एक कवि के रूप में वे छायावाद की त्रिमूर्ति में ऐसे ही सम्मिलित नहीं हुए हैं। उनका प्रकृति राग उनकी तीव्र संवेदनशीलता को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है। छायावाद को लोकमंगल से जोड़ने में पंत जी की सफलता बहुत बड़ी है। इसी तरह 'छायावाद' के भाषा–परिष्कार, बिम्ब–योजना, प्रतीकात्मकता को बहुत स्तरीय और विचार–संवेदना के अनुरूप बनाने में पंत जी का प्रदेय साधारण नहीं है। छायावादी कवियों में सबसे अधिक मात्रा में पंत जी ने ही लिखा है और उनका लिखा हुआ बहुत कुछ आज भी प्रासंगिक है।

जहाँ पंत जी ने छायावाद की सभी प्रवृत्तियों को अपने काव्य में आत्मसात् किया है, वहीं इन प्रवृत्तियों का अतिक्रमण करने का प्रारंभ भी उन्हीं के काव्य में दिखायी देता है। समग्रतः वे छायावाद के प्रमुख स्तंभ और एक कालजयी हस्ताक्षर हैं।

9.5 कठिन शब्द

1. इतिवृतात्मकता
2. स्वानुभूति
3. कौतूहल

4. नैतिकता

5. लाक्षणिकता

6. अभिव्यंजना

7. मानवीकरण

8. अतिक्रमण

9. कालजयी

10. सरोकार

11. प्रतीकात्मकता

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) छायावादी काव्यधारा में पंत का स्थान निर्धारित कीजिए।

उ) _____

_____

_____

_____

_____

प्र2) छायावादी काव्यधारा में मानवतावादी दृष्टिकोण पर टिप्पणी कीजिए।

उ) _____

_____

_____

_____

_____

प्र3) छायावादी काव्यधारा में पंत की सौन्दर्यदृष्टि पर विचार कीजिए।

उ) _____

_____

_____

_____

_____

प्र4) छायावादी काव्यधारा में पंत के प्रकृति चित्रण पर विचार कीजिए।

उ) _____

_____

_____

_____

_____

9.7 पठनीय पुस्तकें

1. नामवर सिंह– छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
2. रमेशचन्द्र शाह– छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973
3. सूर्यप्रसाद दीक्षित– सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1970
4. डॉ. रामजी पाण्डेय – सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व और कृतित्व
5. प्रतिभा कृष्णबल – छायावाद का काव्य–शिल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1950

सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति–चित्रण

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति–चित्रण

10.3.1 आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण

10.3.2 उद्दीपन रूप में प्रकृति–चित्रण

10.3.3 अलंकृत रूप में प्रकृति–चित्रण

10.3.4 उपदेश के निमित प्रकृति

10.3.5 रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

10.3.6 सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

10.4 निष्कर्ष

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

– प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप पंत के प्रकृति–चित्रण को जानेंगे।

– प्रकृति का चित्रण किन–किन रूपों में होता है इसका अध्ययन कर सकेंगे।

– प्रकृति के आलम्बन–उद्दीपन रूपों से परिचित हो सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति हमें अनेक रूपों में दिखाई देती है। उनका स्वयं कहना है कि उन्हें कविता करने की प्रेरणा प्रकृति–निरीक्षण से ही मिली है। उनके काव्य में एकओर मानव और प्रकृति के परस्पर आश्रित होने की वास्तविकता रेखांकित होती है, दूसरी ओर प्रकृति को लेकर पंत जी की चिंता, लगाव और आत्मीयता की पर्ते खुलती हैं।

10.3 पंत का प्रकृति–चित्रण

कविवर सुमित्रानंदन पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति सुन्दरी की मनोहर छवियां अंकित की गई हैं। वे कोमल कल्पना के कवि हैं। वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि कविता करने की प्रेरणा मुझे प्रकृति निरीक्षण से प्राप्त हुई है– ''कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। प्रकृति–निरीक्षण और प्रकृति–प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंगही बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकटक्षणों में अमोद्य सान्त्वना मिली है।''

उदाहरण के तौर पर 'हिमाद्रि' शीर्षक रचना में भी प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक रूपों का चित्रण मिलता है–

''मेघों की छाया में संग–संग
हरित घाटियाँ चलती प्रतिक्षण,
वन के भीतर उड़ता चंचल
चित्र तितलियों का कुसुमित वन,
रंग–रंग के उपलों पर रणमण
उछल उत्स करते कल गायन,
झरनों के स्वर जम से जाते
रजत हिमानी सूत्रों में घन।''

'अतिमा' काव्य संकलन की 'संदेश' शीर्षक कविता में सुमित्रानंदन पंत ने नगरीकरण, कथित विकास, पर्यावरण–प्रदूषण में आकंठ डूबे लोगों को प्रकृति से उनके अनेक रिश्तों का स्मरण कराया है। यह स्मरण साभिप्राय है एक ओर इसमें मानव और प्रकृति के परस्पर आश्रित होने की वास्तविकता रेखांकित होती है, दूसरी ओर प्रकृति को लेकर पंत जी की चिंता, लगाव और आत्मीयता की पर्तें खुलती हैं–

''तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को?

तुम जिसके आंगन में खेले कूदे, जिसके आंचल में

सोये–जागे, रोये जागे, हंस बड़े हुए

जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्नप्रिया

जो कला–मुकुर बन गयी तुम्हारे हाथों में''

सुमित्रानंदन पंत ने कई स्थलों पर स्वीकार किया है कि उनके 'कवि' बनने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका पर्वतीय अंचल की प्रकृति की है। 'मेरा बचपन' शीर्षक वार्ता में उनकी आत्मस्वीकारोक्ति है– ''बचपन में मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक कौसानी की हंसमुख चंचल हरियाली ने और नीले स्वच्छ आसमान ने सिखाया है। धरती की हरियाली, आसमान की नीलिमा, धूप का उजलापन और हवा की निर्मल चंचलता अनजाने में चुपचाप जो पाठ सिखाती है वह बचपन में पुस्तकों को रटने से नहीं मिल सकती। 'रश्मिबंध' की परिदर्शन शीर्षक भूमिका में भी उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है– ''मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ।'' अनेक कविताओं में पंत 'कौसानी' को जिस तरह स्मरण करते हैं उससे भी 'मुग्ध' प्रकृति का आत्म–समर्पण प्रमाणित होता है। 'हिमाद्रि' कविता में पर्वतीय सौन्दर्य के निमित्त हिमगिरि को उन्होंने अपना गुरू ही मान लिया है, जिसने उनके अन्तर्मन को अपने सौन्दर्य, ज्योति और गौरव से भर दिया है–

''सोच रहा किसके गौरव से

मेरा यह अन्तर्जग निर्मित।

लगता, तब हे प्रिय हिमाद्रि

तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित''

प्रकृति का बहुरंगी सौन्दर्य पंत जी के युवा मन पर इतना अधिक हावी रहा है कि उसके आगे किसी युवती के सौन्दर्य का आकर्षण भी फीका पड़ता रहा–

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,

तोड़ प्रकृति से भी माया।

बाले तेरे बाल जाल में

कैसे उलझा दूं लोचन?

भूल अभी से इस जग को।''

पंत छायावाद के यशस्वी कवि हैं। छायावाद 'प्रकृति' पर इतना निर्भर है कि डॉ. नगेन्द्र सरीखे आलोचकों ने इसे 'प्रकृति काव्य' की संज्ञा दी है। वैसे तो पंत के समग्र काव्य में 'प्रकृति' विभिन्न रूपों में है लेकिन 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' में उसका सौन्दर्य मनोरम, आत्मीय और नवीन है। प्रकृति–चित्रण के जितने रूप हो सकते हैं, वे पंत–काव्य में न्यूनाधिक उपलब्ध हैं।

पंत के प्रकृति चित्रण की एक विशेषता यह भी है कि उन्हें प्रकृति के कोमल एवं सुकुमार रूप ने ही अधिक मोहित किया है। सामान्यतः उनके काव्य में प्रकृति के भयानक रूप का चित्रण नहीं है। पन्त के काव्य में प्रकृति के यद्यपि सभी रूप उपलब्ध होते हैं तथापि आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण उन्हें विशेष प्रिय है। इसके अतिरिक्त वे उद्दीपन रूप, संवेदनात्मक रूप में, रहस्यात्मक रूप में, प्रतीकात्मक रूप में, अलंकार योजना के रूप में, मानवीकरण रूप में तथा लोकशिक्षा के रूप में प्रकृति चित्रण करते दिखाई पड़ते हैं। पन्त जी के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं का निरूपण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है–

10.3.1 आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति को आलम्बन बनाकर उसके नाना रूपों का चित्रण किया जाता है वहाँ आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्रण के समर्थक थे। संभवतः स्वतन्त्र रूप में प्रकृति चित्रण कवि की अतिरिक्त संवेदनशीलता का द्योतक होता है। आलंबन रूप में प्रकृति के चित्रण के दो प्रकार हैं। एक तो यथावत् या यथातथ्यात्मक रूप में प्रकृति के उपादानों का चित्रण होता है, दूसरे प्रकार में प्रकृति के वर्णन के साथ उसके प्रभाव को भी जोड़ दिया जाता है। इसमें प्रकृति के उपकरणों का नाम परिगणन मात्र नहीं होता। शुद्ध प्रकृति–चित्रण पंत के प्रारंभिक काव्य में भी कम मिलते हैं। कोई न कोई अनुभूति या अलंकार–विशेषतः मानवीकरण साधारण वर्णन को असाधारण बना देता है चूंकि छायावादियों ने प्रायः प्रकृति को अपने दुख'सुख की सहचरी के रूप में देखा है, अतः केवल पेड़ों, नदियों, बादलों का वस्तुगत वर्णन संभव भी नहीं था। 'पर्वत प्रदेश में पावस' शीर्षक कविता में प्रारंभ तो प्रकृति के सामान्य परिवर्तन की सूचना से है, लेकिन शीघ्र ही अलंकरण का हस्तक्षेप होने लगता है–

''पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश

पल–पल परिवर्तित प्रकृति–वेश।

मेखलाकार पर्वत अपार

अवलोक रहा है बार–बार

नीचे जल में निज महाकर''

पंत जी की अनेक कविताओं में यथा–एकतारा, गुंजन, परिवर्तन, बादल, हिमाद्रि, नौका विहार आदि में आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है। 'आंसू' कविता में बादलों के सौन्दर्य का चित्रण आलम्बन रूप में करते हुए वे कहते हैं–

''बादलों के छायामय खेल

घूमते हैं आंखों में फैल।

अवनि औ अम्बर के वे खेल शैल में जलद जलद में शैल।।''

पंत जी की प्रसिद्ध कविताओं में 'मौन निमंत्रण' और 'बादल' में जहाँ–तहाँ आलम्बन रूप में प्रकृति है, लेकिन शीघ्र ही वह कवि की विस्मय भावना का आलम्बन बन जाती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

तुमुल तम में जब एकाकार

ऊँघता एक साथ संसार,

भीरु झींगुर कुल की झनकार

कँपा देती तंद्रा के तार,

न जाने खद्योतों से कौन

मुझे पथ दिखलाता तब मौन।''

इस उदाहरण में अंधेरी रात का वर्णन, झींगुर की झनकार आदि का वर्णन आलंबन रूप में ही है लेकिन अंतिम दो पंक्तियों में प्रकृति उदीप्त कर विस्मय की सृष्टि करती है। इसी तरह 'बादल' कविता अनेक नयी कल्पनाओं से भरी पड़ी है और कई अद्‌भुत चित्र रचे गए हैं। ये सभी यथातथ्य प्रकृति–चित्रण से अलग संश्लिष्ट आलंबन चित्रण की परिधि में आएँगे। कल्पना और अलंकार–योजना के सहयोग से इस तरह का चित्रण अत्यन्त संवेदनात्मक बन पड़ा है एक उदाहरण इस प्रकार है–

''कभी अचानक भूतों का–सा

प्रकटा विकट महा–आकार

कड़क–कड़क, जब हंसते हम सब

थर्रा उठता है संसार।''

'नौका विहार' कविता हालांकि 'मानवीकरण' और गंभीर चिंतन से संश्लिष्ट है, फिर भी कहीं–कहीं उसमें आलम्बन रूप प्रकृति का वैभव व्यक्त हो जाता है–

''चांदनी रात का प्रथम पहर

हम चले नाव लेकर सत्वर

सिकता की सस्मित सीपी पर

मोती की ज्योत्स्ना रही विचर।''

पंत जी की छायावादी दौर की कविताओं में प्रकृति के प्रति गहरा विस्मय और कौतूहल का भाव मिलता है। कुछ आलोचक इसे 'रहस्यवाद' का प्रभाव मानते हैं, जबकि यह उनके प्रकृति से लगाव से सम्बद्ध जिज्ञासा की देन है। डॉ. हरिचरण शर्मा का विचार है ''विस्मय भावना छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है। प्रातः बेला में पक्षियों की चहक और उसकी मधुर तान से विस्मय, विमुग्ध होकर इस प्रकार का प्रश्न कोई छायावादी कवि ही कर सकता था, जिसके पास उर्वर कल्पना थी और रोमनी–दृष्टि भी। जिस प्रश्न की ओर डॉ. हरिचरण शर्मा का संकेत है वह वीणा' की 'प्रथम रश्मि' कविता में विद्यमान है–

''प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,

तूने कैसे पहचाना?

कहाँ–कहाँ हे बाल विहंगनी

पाया, तूने यह गाना?''

यही विस्मय–भाव 'छाया' और 'बादल' सरीखी कविताओं में और भी कलात्मक रूप में उभरा है। कवि प्रकृति को देखकर बार–बार चकित होता है, कौतूहल से भर उठता है और अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उसे घेर लेती हैं। 'हिमाद्रि' कविता में अपने विस्मय–भाव को पंत जी ने स्पष्ट कहा है–

''बाल्य चेतना मेरी तुम में

जड़ीभूत आनन्द तरंगित,

तुम्हें देख सौन्दर्य–साधना

महाश्चर्य से मेरी विस्मित।''

संश्लिष्ट आलंबन–चित्रों में एक विशेष भाव बार–बार मुखर होता है। कवि को 'प्रकृति' किसी उड़ने वाले पक्षी का गतिशील बिम्ब हमेशा देती है। कभी घाटी उड़ने को तैयार लगती है तो कभी पहाड़ उड़ते हुए लगते हैं। 'अलमोड़े का बसंत' कविता से एक उदाहरण–

''लो, चित्रशलभ सी, पंख खोल

उड़ने को है कुसुमित घाटी–

यह है अलमोड़े का बसंत

खिल पड़ी निखिल पर्वत–घाटी।''

'पर्वत प्रदेश में पावस' कविता से उदाहरण–

''उड़ गया अचानक लो भूधर

फड़का अपार वारिद के पर''

'एक तारा' कविता से उदाहरण–

''तरू शिखरों से वह स्वर्ण विहग

उड़ गया खोल निज पंख सुभग

किस गुहा–नीड़ में रे किस मग''

इन सभी में प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य है और कवि की आस्वादन क्षमता और संवेदनशीलता के अप्रतिम होने की गवाही देता है। 'ऊर्जा–संध्या' में सांझ का एक मनोहारी चित्र इस प्रकार है–

''सांस मुझे पर, अधिक सुहाती

छायी निर्जन गिरि आँगन पर''

10.3.2 उद्दीपन रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति मानवीय भावनाओं को उदीप्त करती है, वहाँ उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। संयोग काल में जहाँ प्रकृति सुख को उदीप्त करती है, वहीं वियोग काल में विरह वेदना को उदीप्त करती है। 'रश्मिबंध' की भूमिका में पंत जी ने कहा है' ''प्रकृति–सौन्दर्य और प्रकृति–प्रेम की अभिव्यंजना 'पल्लव' में अधिक प्रांजल तथा परिपक्व रूप में हुई है।'' 'ग्रंथि से', आंसू, आदि अनेक कविताएँ साक्ष्य के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। 'ग्रंथि' में बसंत का आगमन पूरे संसार की कामनाओं को उकसाने वाला है–

''जान कर ऋतुराज का नव आगमन

अखिल कोमल कामनाएं अवनि की खिल उठी थीं''

'गाता खग' में प्रकृति के दुखी और सुखी करने वाले दोनों रूप हैं। डूबते हुए तारे कवि–मन को रूला जाते हैं जबकि हंसते हुए फूल हंसी के लिए प्रेरित करते हैं–

''हंसमुख प्रसून सिखलाते

पल भर है, जो हंस पाओ

अपने उर के सौरभ

से जग का आंगन भर जाओ।''

'दिवा स्वप्न' कविता में नव मुकुलों की सौरभ मन को उन्मत्त करती है और कवि को लगता है कि भव–बाधासे त्राण तभी संभव है, जब वह वहाँ जाकर प्रकृति की गोद में छिप जाए–

''वहीं कहीं, जी करता, मैं जाकर छिप जाऊं

मानव–जग के क्रंदन से छुटकारा पाऊं''

प्राकृतिक सौन्दर्य केवल शांति ही नहीं देता, कभी–कभी प्रणय के उन्माद की सृष्टि भी करता है–

''देखता हूं जब उपवन

पियाले में फूलों के

प्रिय भर–भर अपना यौवन

पिलाता है मधुकर को''

यह सामान्य सा नियम है कि जो प्राकृतिक उपादान संयोग वेला में सुख बढ़ाते हैं, विरह के क्षणों में वे ही व्यथा के निमित्त बन जाते हैं। कवि को प्रकृति भी विलाप करती सी लगती है–

''गहन व्यथा से रंगे सांझ के बादल

मौन वेदना रंजित फूलों के दल

मधु समीर भी श्वास–गंध से चंचल

सांसे भर–भर तुम्हें खोजती विह्वल''

'लोकायतन' आदि कृतियों में भी उद्दीपन रूप में अनेक प्रकृति–चित्र मिलते हैं। जिसमें ग्राम वधू की एक अनुभूति इस प्रकार व्यक्त हुई है–

''चकई–चकवा जमुना तट पर

तिरते मिला सुनहले प्रिय पर

पहर न कटते पूस निशा के

श्याम बिना डसता सूना घर''

10.3.3 अलंकृत रूप में प्रकृति–चित्रण

पंत के काव्य में प्रकृति अलंकृति रूप में सर्वाधिक दिखाई देती है। अलंकारों में भी 'मानवीकरण' प्रकृति-चित्रण में बहुत कम आया है। वस्तुतः प्रकृति पर चेतना का आरोप सम्पूर्ण छायावादी कविता की विशेषता है और 'मनवीकरण' इस कार्य में सबसे अधिक सहायक होता है। मानवीकरण से तात्पर्य है किसी मानवेतर वस्तु पर मानवीय रूपों, व्यापारों तथा भावों का आरोपण। पंत जी के अधिकांश प्रकृति विषयक गीत, प्रकृति–विषयक होने के साथ ही मानव–विषयक भी प्रतीत होते हैं। पंत जी की बादल, छाया, संध्या, मौन निमंत्रण, परिवर्तन, नौका विहार आदि प्रसिद्ध कवितओं में प्रकृति अलंकारों से सज–संवर कर व्यक्त हुई है। संध्या–सुंदरी का एक रमणीय चित्र इस प्रकार है–

''कहो तुम रूपसि कौन?

व्योगम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप

पलकों में निमिष, पदों में चाप।''

'बादल' कविता में बादल अपना जो परिचय देते हैं उसमें मानवीकरण का सौन्दर्य देखते बनता है–

'सुरपति के हम ही हैं अनुचर

जगत प्राण के भी सहचर,

मेघदूत की सहज कल्पना

चातक के चिर जीवनधर,

'मौन निमंत्रण' कविता से एक उदाहरण–

चकित रहता शिशु–सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार

खोलती कलिका उर के द्वार,

देख वसुधा का यौवन भार''

इन पंक्तियों में अलंकरण से प्रकृति का सौन्दर्य और दीप्त हो उठा है। 'परिवर्तन' कविता के कुछ अंशों में भी प्रकृति अलंकृत रूप में उपस्थित है। पंत जी की यह विशेषता है कि वे केवल, कोई चित्र उपस्थित करने के लिए प्रकृति को अलंकारों से नहीं सजाते हैं। क्षण–भंगुरता और सतत् परिवर्तनशीलता के प्रमुख पक्ष को निम्नलिखित पंक्तियों में सलीके से कहा गया है–

''आज तो सौरभ का मधुमास

शिशिर में भरता सूनी साँस

वही मधुऋतु की गुंजित डाल

झुकी थी जो यौवन के भार

अंकिचनता में निज तत्काल

सिहर उठती जीवन है भार''

'नौका विहार' में 'गंगा' को तापस बाला के रूप में देखा और अंकित किया गया है–

''तापस बाला गंगा निर्मल

शशि, मुख से दीपित मृदु करतल

लहरें उर पर कोमल कुंतल''

जहाँ मानवीकरण का योगदान नहीं है वहाँ भी उपमा, रूपक आदि की सहायता से ताजे प्रकृति–चित्र उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए 'एक तारा' कविता का यह अंश–

''गंगा के चल जल में निर्मल

कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल

है मूंद चुका अपने मृदुदल

लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर

पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर

अरुणाई प्रखर शिशिर से डर''

'हिमाद्रि' में पार्वती के अनेक संबोधनों को लेकर हिमालय की सुषमा का अंकन ध्यान आकर्षित करता है–

''जब भी ऊषा वहाँ दीखती

वधू उमा के मुखसी लज्जित

बढ़ती चंद्रकला भी गिरिजा सी

हो गिरि के क्रोड़ में उदित।''

'हिमप्रदेश', 'गिरि प्रांतर' आदि परवतर्ती कविताओं में जहाँ भी प्रकृति आती है, कवि अनेक प्रकार की कल्पनाओं को गूंथने लगता है। कहीं 'किरणों की भेड़ें चरतीं' जैसे आकर्षक बिम्ब मिलते हैं तो कहीं प्रकृति काकिंचित् भयावह रूप भी सामने आता है–

''चीलों से मंडरा बन–अंधड़

गूँगी खोहों में खो जाते''

पर्वतीय प्रदेश को 'कुसुमित शृंगार कक्ष' बताना एक सुन्दर स्वच्छंदतावादी कल्पना है–

भू की परिक्रमा कर ऋतुएँ

वहाँ पास करतीं प्रति वत्सर

वह कुसुमित शृंगार कक्ष था

गंध वर्ण ध्वनि ग्रथित मनोहर

प्रचुर प्रकृति–चित्रों के बावजूद पंत काव्य में पुनरावृत्ति का अभाव है। वे प्रकृति के सुकुमार कवि माने गए हैं और उनके पास उसके सौन्दर्य का वैभव इतना है कि बार–बार लुटाने से भी कम नहीं पड़ता। इसीलिए नदी, पहाड़ और झरने आदि उनकी कविता में जब भी आते हैं, नए रूप में आते हैं, नए अलंकारों के साथ आते हैं। 'हिमाद्रि' में जाड़े की ऋतु में झरने की स्थिति को झरनों के स्वर जम से जाते' कहकर मूर्त किया गया है, जबकि 'गिरि–प्रातर' कविता में रूपक के सहयोग से झरनों का यह रूप उभरा है–

मरकत की घाटी में सुलग

वनफूलों के झरने गाते

'हिम प्रदेश' कविता में 'वन फूलों' के स्थान पर 'दूध फेन' का अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है–

दूध फेन के स्त्रोत उफनते

गिरि के गीत मुखर आँगन में

10.3.4 उपदेश के निमित्त प्रकृति

प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से जीवन सत्यों की अभिव्यक्ति करने और किसी तरह का संदेश या उपदेश देने की प्रवृति भी पंत जी की कुछ कविताओं में उपलब्ध है। एक ही चरम सत्य, सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है, इस चिंतन को 'परिवर्तन' कविता में विस्तार से कहा गया है। फूल और फल के बहाने से आत्म बलिदान के महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

''म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान

फलों में फिरती फिर अम्लान

महत् है अरे आत्म–बलिदान

जगत केवल आदान–प्रदान''

'नौका–विहार' में कविता का अंत दार्शनिकता लिए हुए है, कवि ने गंगा की धार को संसार के जीवन प्रवाह का प्रतीक बना दिया है–

इस धारा सा ही जग का क्रम

षाष्वत इस जीवन का उद्‌गम

षाष्वत है गति, षाष्वत संगम।''

'संदेश' शीर्षक कविता में धूप का मानवीकरण है। धूप कवि को प्रकृति की ओर लौटने का संदेश देती है–

''लो, मैं असीम का लायी हूँ संदेश तुम्हें।

आओ, फिर खुली प्रकृति की गोदी में बैठो।''

10.3.5 रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

छायावादी कवि पन्त ने प्रकृति में उस अज्ञात अगोचर सत्ता के दर्शन जहाँ किए हैं वहाँ रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण माना गया है। पन्त की 'मौन निमन्त्रण' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है क्योंकि उसमें कवि को सर्वत्र उस अज्ञात सत्ता के मौन निमन्त्रण का आभास होता है–

''देख वसुधा का यौवन भार गूँज उठता है जब मधुमास।

विधुर उर के से मृदु उद्‌गार कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास

न जाने सौरभ के मिस कौन सन्देशा मुझे भेजता मौन?''

10.3.6 सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण

जहाँ प्रकृति मानव के साथ सम्वेदना व्यक्त करती हुई मानव की प्रसन्नता एवं हास–उल्लास के क्षणों में स्वयं उल्लास व्यक्त करती है तथा उसके दुख के क्षणों में स्वयं रूदन करती जान पड़ती है, वहाँ सम्वेदनात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण माना जाता है। 'परिवर्तन' कविता की इन पंक्तियों में मानव जीवन की क्षणभंगुरता को देखकर आकाश रोता सा प्रतीत होता है और वायु निश्वास भरती सी लगती है–

''अचिरता देख जगत की आप शून्य भरता समीर निश्वास।

डालता पातों पर चुपचाप ओस के आंसू नीलाकाश।''

10.4 निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि सुमित्रानंदन पंत की कविता में प्रकृति चाहे जिस रूप में अवतरित हुई, उसके सौन्दर्य–चित्रण पर पंत जी की अपनी आन्तरिक प्रकृति, रूचि और सौन्दर्यबोध की छाप स्पष्ट है। प्रकृति के सौन्दर्य में नए अर्थ और सार्थकता खोजने में पंत जी की महत्वपूर्ण भूमिका है। पंत की कविताओं से समाज और प्रकृति का संतुलन, व्यक्ति और प्रकृति का संतुलन, इतिहास और प्रकृति का सन्तुलन से एक नये युग का निर्माण होता है।इस तरह प्रकृति के प्रति निश्चल राग ने पंत के प्रकृति चित्रण को अधिक संवेद्य और संप्रेषणीय बनाया है।

10.5 कठिन शब्द

1. संप्रेषणीयता
2. क्षणभंगुरता
3. सम्वेदनात्मक
4. पुनरावृत्ति
5. अलंकरण
6. सतत्
7. यथातथ्य
8. संश्लिष्ट
9. नैसर्गिक
10. आकंठ

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत के प्रकृति–चित्रण पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. पंत के काव्य का आलम्बन रूप में प्रकृति–चित्र कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. प्रकृति के मानवीकरण को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

10.7 पठनीय पुस्तकें

1. डॉ.नगेन्द्र– सुमित्रानंदन पंत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1938
2. नामवर सिंह– छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
3. रमेशचन्द्र षाह– छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973

सूर्यप्रसाद दीक्षित– पंत का प्रकृति–चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973

सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता

11.0 रूपरेखा
11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता
11.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव
11.3.2 गांधीवादी विचारधारा
11.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन
11.3.4 अरविन्द दर्शन
11.3.5 नव मानवतावादी दर्शन
11.4 निष्कर्ष
11.5 कठिन शब्द
11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.7 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप पंत के प्रकृति–चित्रण को जानेंगे–

– सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिकता सम्बन्धी विचारों का अध्ययन

– सुमित्रानंदन पंत के औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव क्या है।

– पंत की गांधीवादी विचारधारा को जान पायेंगे।

– पंत की अरविन्द दर्शन सम्बन्धी विचारों को जान पायेंगे।

11.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत जी आरम्भ से ही अपनी दार्शनिक चेतना के प्रति सजग कवि रहे हैं। एक गंभीर और चिंतनशील विचारक के साथ–साथ वह एक संवेदनशील कवि भी रहे हैं। इनकी कविताओं में उनके स्वानुभूत जीवन–दर्शन की झलक देखने को मिलती है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दोनों तरह की विचारधाराओं को अपने काव्य में स्थान दिया है। वह जीवन और जगत के प्रति एक निश्चित सिद्धान्त और दृष्टिकोण अपनाते हैं।

11.3 पंत की दार्शनिकता

प्रत्येक कवि जीवन और जगत के विषय में एक निश्चित सिद्धान्त बनाकर चलता है। यह सिद्धान्त सामयिक उपयोगिता के आधार पर बदल भी सकता है, किन्तु उसकी मूल चेतना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पंत जी की दर्शनिक चेतना प्रारम्भ से ही सजग रही है। वे जितने संवेदनशील कवि रहे हैं, उतने ही गंभीर और चिंतनशील विचारक भी। उनकी कविताओं में उनका स्वानुभूत जीवन–दर्शन केन्द्रस्थ है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दोनों तरह की चिंतन परम्पराओं को अपने काव्य में आत्मसात् किया है। उनकी दार्शनिकता को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित कर सकते हैं–

11.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव

11.3.2 गांधीवादी विचारधारा

11.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन

11.3.4 अरविन्द दर्शन

11.3.5 नव मानवतावादी चिंतन

सुमित्रानंदन पंत की प्रारम्भिक कृतियों में 'संवेदना' का विराट वैभव फैला हुआ है, किन्तु 'दार्शनिकता' काव्यात्मकता की अनेक परतों के नीचे ठोस आधार बनी हुई है।

11.3.1 औपनिषदिक चिंतन का प्रभाव

कविवर पंत कभी किसी एक चिंतन–सरणि से बंधकर नहीं रहे। उन्हें जिस जगह से जो उपयोगी चिंतन–सूत्र मिला, उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। वेदों और उपनिषदों की अनेक अवधाराणाएँ उनके काव्य में प्रारम्भ से लेकर

'लोकायतन' ओर 'सत्यकाम' तक निरन्तर उपस्थित है। इस विषय में अनेक विद्वानों ने अपना पक्ष रखा है जिसमें डॉ. प्रेमशरण रस्तोगी जी का मानना है कि पंत जी की आध्यात्मिकता औपनिषदिक और वैदिक ऋषियों द्वारा व्यापक सत्यों पर आधारित है। डॉ. प्रताप सिंह चौहान का मानना है कि पल्लव से लेकर गुंजन तक की रचनाओं में चिंतन के परिवेश में औपनिषदिक दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।

'परिवर्तन', 'नौका विहार' आदि अनेक कविताओं में कवि का मानना है कि एक ही परम सत्ता विश्व की हर वस्तु में विद्यमान है, इस सत्य को उन्होंने कई तरह से अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। 'परिवर्तन' कविता का यह अंश इस संदर्भ में पठनीय है–

''एक ही तो असीम उल्लास

विश्व में पाता विविधाभास

तरल जलनिधि में हरित विलास

शांत अंबर से नील विकास

.....

विविध द्रव्यों में विविध प्रकार

एक ही मर्म मधुर झंकार''

पंत जी संसार को मिथ्या तो नहीं मानते, लेकिन जीवन की क्षण–भंगुरता, निस्सारता की चर्चा करते हैं। मृत्यु को अनिवार्य सत्य मानते हैं लेकिन भारतीय चिंतन–पद्धति के अनुरूप वे मरण को जीवात्मा का उस परम सत्ता में लय स्वीकार करते हैं–

''फूल, रच भव स्वप्न असार

बीज में लय फिर हुआ अनंत''

चाहे जीवन हो या मृत्यु या जीवन के अन्य भेद–प्रभेद, सर्वत्र एक ही सत्य की व्याप्ति है, यह बात उनकी कई रचनाओं में निष्कर्ष रूप में कही गयी है–

''अन्न प्राण मन आत्मा केवल

ज्ञान भेद है सत्य के परम

इन सबमें चिर व्याप्त ईश रे

मुक्त सच्चिदानंद चिरंतन''

वीणा में कवि उस परम सत्ता को संबोधित कर कहता है–

''मां, वह दिन आवेगा जब

मैं तेरी छवि देखूंगी

जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है

जग के निर्मल दर्पण में।''

'एक तारा' कविता में कवि ने गहन आत्मदर्शन की अभिव्यक्ति की है–

''वह रे! अनन्त का मुक्त मीन,

अपने असंग सुख में विलीन,

स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन''

पंत जी यह दार्शनिक चेतना उत्तरोतर विकास को प्राप्त होती गई है और परवर्ती काव्य में यह अपने प्रौढ़ विकसित रूप में दिखाई देती है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में पंत जी की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी। लेकिन पंत–काव्य की दार्शनिकता केवल उपनिषदों के चिंतन तक सीमित नहीं है। उस पर नये–नये दर्शनों का भी पर्याप्त प्रभाव है।

11.3.2 गाँधीवादी विचारधारा

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व और चिंतन से पंत जी पर्याप्त प्रभावित हुए थे। अतः उनकी कई कविताओं में गाँधीवाद के विचार–सूत्रों का समर्थन मिलता है। 'रश्मिबंध' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि छायावादी कविता के भावपक्ष पर महात्मा जी के सांस्कृतिक व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गांधी जी पर कई कविताएँ लिखी हैं। 'बापू', 'महात्मा जी के प्रति' आदि कविताएँ प्रमाण के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। वे गाँधी जी को 'नव संस्कृति के दूत' के रूप में मान्यता देते हैं, जो मानव की आत्मा का उद्धार करने आया था। अनेक संदेहों के बावजूद उन्हें विश्वास है कि कुछ गांधीवादी मूल्य हमेशा मानव के हित के लिए उपयोगी बने रहेंगे। 'बापू' कविता से एक उदाहरण–

''नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन–क्षय

पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।''

गाँधीवाद में पशुता और हिंसा का विरोध है और विश्व की कल्याण–कामना उसे अभीष्ट है। 'विनय' कविता में पंत जी ने कुछ इसी प्रकार के मनोभाव व्यक्त किए हैं–

''संस्कृत हों, सब जन, स्नेही हों, सहृदय, सुन्दर।

संयुक्त कर्म पर विश्व एकता हो निर्भर''

वे गाँधी जी की हत्या से बहुत दुखी होते हैं और उनकी कामना है कि हिंसा का तिरोभव हो और अहिंसा का मूल्य स्थापित हो। उस दुखद घटना को याद करते हुए वे 'अहिंसा' की पक्षधरता इन शब्दों में व्यक्त करते हैं–

''स्वर्गदूत की नरबाल दे फिर

रक्त पूत क्या हुए धरा कण।

भ्रांतिमुक्त हो सका शप्त क्या

मध्य युगों का शील रूग्ण मन?

नम्र अहिंसक को हिंसा की

क्रर विदा। रे दैव दग्ध क्षण।

हिंसा यदि उठ जाय धरा

तो जन भू का भरे आर्द्र व्रण।''

लेकिन गाँधीवाद पंत जी को बहुत समय तक संतुष्ट नहीं कर सका था। उन्होंने स्वयं कहा है– ''जीवन यथार्थ की प्रथम प्रेरणा मुझे गाँधीवाद से मिली, किन्तु उसकी सामूहिक वैश्व परिणति के लिए इस विज्ञान के यंत्र–युग में जिस आर्थिक पीठिका की आवश्यकता थी, वह मुझे इसमें नहीं मिल सकने के कारण मेरे मन ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के जीवन–यथार्थ को अधिक पूर्ण तथा वैज्ञानिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया।'' 'ग्राम्या', 'युगवाणी' में उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव मिलता है। लेकिन कुछ समय के पश्चात् 'लोकायतन' में वे फिर एक बार गाँधी–दर्शन से जुड़ गए। इस महाकाव्य में नम्र अहिंसा को मूल्यवान और मानवता का कल्याण करने वाली माना गया है। महात्मा गाँधी के लिए कहा गया है–

''आदर्श व्यावहारिक तुम

युग सेतु, कर गए निर्मित

भौतिक आध्यात्मिक जग के

शिखरों पर सत्य समन्वित''

डॉ. हरिचरण शर्मा ने 'लोकायतन' के विषय में लिखा है– ''कवि पंत ने वस्तुतः लोकायतन में जिन दर्शनो की अभिव्यक्ति की है, वह आध्यात्मिक दर्शन है, जिसकी पीठिका गांधीदर्शन है। गांधीवादी दर्शन से हृदय का सारा भेद

भाव मिट जाता है, मन का संशय जाता रहता है और मानवता का विकास होता है। इसी कारण कवि ने इस नयी चेतना का नया पृष्ठ कहा है।

11.3.3 मार्क्सवादी जीवन–दर्शन

'रश्मिबंध' के 'परिदर्शन' में पंत जी ने संकेत किया है कि 'ग्राम्य' और 'युगवाणी' में उनका जीवन दर्शनआमूल परिवर्तित नहीं हुआ था, जैसा कि कुछ समीक्षक मानते हैं। मार्क्सवाद से जुड़ने से उनका कवि वस्तु जगत् के संघर्ष को समझने लगा और उसकी वास्तविकता को महत्व देने लगा। कई आलोचकों को भी लगता है कि अपनी काव्ययात्रा के इस दौर में पंत 'प्रगतिशील' तो हो गए थे, लेकिन वे मार्क्सवादी पद्धति की अर्थव्यवस्था और वर्ग–संघर्ष के प्रति आश्वस्त नहीं थे। लेकिन 'युगवाणी' में मार्क्स के प्रति उनका आकर्षण प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त हुआ है–

''धन्य मार्क्स! चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।

तुम त्रिनेत्र के ज्ञान–चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।''

'नव–संस्कृति' कविता में वर्गविहीन शोषण–मुक्त समाज की स्थापना का स्वप्न देखा गया है। यहाँ मार्क्स के दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है–

''रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हो आधारित।

श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित।

धन–बल से हो जहाँ न जन–श्रम शोषण।

पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

'ताज' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का

मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का?''

'युगवाणी' की 'दो लड़के' कविता में भी समतामूलक समाज की स्थापना की आवश्यकता समझी गयी है। 'जग का अधिकारी है वह, जो दुर्बलेतर, क्यों न एक हो मानव–मानव सभी परस्पर' आदि पंक्तियों से यही ध्वनि निकलती है। वस्तुतः 'ग्राम्या' की कविताओं में श्रमजीवियों की दुर्दशा का बयान है। उनकी पीड़ा से संतप्त कवि एक नयी व्यवस्था के गढ़ जाने का स्वप्न देखता है। उसे लगता है कि नयी व्यवस्था में श्रमिकों का उत्पादन के साधनों पर अधिकार होगा–

''साक्षी–इतिहास आज होने को पुनः युगांतर–

श्रमिकों का शासन–होगा अब उत्पादन–यंत्रों पर

वर्गहीन सामाजिकता देगी, सबको सम साधन

पूरित होंगे जन के भव–जीवन के निखिल प्रयोजन''

छायावादी कवियों में पंत संभवतः अकेले कवि हैं, जिन्होंने गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय करने का प्रयास किया है। वे शोषण मुक्त समाज की स्थापना अहिंसक तरीके से करने के पक्ष में लगते हैं। इसके बावजूद यह सत्य है कि उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में मार्क्सवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है।

11.3.4 अरविन्द–दर्शन

'उत्तरा' काव्य–संग्रह की भूमिका में पंत जी ने लिखा है कि अरविन्द दर्शन पढ़ते–पढ़ते उन्हें लगा कि उनके अपने अस्पष्ट स्वप्न–चिंतन को किसी ने अत्यंत तर्कपूर्ण, सुगठित एवं सुस्पष्ट दर्शन के रूप में रख दिया है। 'स्वर्ण धूलि', 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा' आदि कृतियों की अनेक कविताएँ अरविन्द–दर्शन की चमक लिए हुए हैं। अरविन्द के अनुसार जड़ और चेतन दोनों ब्रह्म के चैतन्य तत्व से परिपूर्ण हैं। जड़ में चेतन तत्व तमस् के रूप में अवचेत में प्रसुप्त हैं। ब्रह्म की चेतना–किरण के ज्ञान से वह तमस् मिट जाता है। पंत जी ने इस संदर्भ में लिखा है–

''यह अंधकार का घोर प्रहर

हो रहा हृदय चेतना द्रवित

फिर मानवीय वन जाग रही

जड़–भूत शक्तियाँ अभिशापित''

अन्यत्र 'निर्माण काल' कविता में भी इस जड़ता और तमस् के नष्ट होने का उल्लेख हुआ है–

''तम के पर्वत पर टूट रही

विद्युत प्रपात सी ज्योति प्रखर''

अरविन्द–दर्शन में प्रयुक्त पदों 'अन्तश्चेतना', 'आत्मा–एक्य', 'व्यक्ति–मुक्ति' आदि का कुछ रचनाओं में स्पष्ट उल्लेख है। दिव्य चेतना रूपी किरण के स्पर्श से सब कुछ बदल जाता है–

''सरों में हंसी लहर

ज्योति का जगा प्रहर

चेतना उठी सिहर

स्पर्श यह दिव्य अमर''

अरविन्द–दर्शन से प्रेरित कुछ कविताओं में गूढ़ता–गंभीरता है। कुछ लोगों गूढ़ता–गंभीरता है। कुछ लोगों को इन कविताओं की आध्यात्मिकता यथार्थ से पलायन लग सकती हैं। लेकिन पंत जी को लगता है कि 'जीवन्त मानव चैतन्य' से जुड़ी ये रचनाएँ यथार्थ–विरोधी नहीं है। नयी चेतना से सम्पन्न इन कविताओं में मनुष्य ही केन्द्र में हैं–

''कोटि सूर्य जलते रे उज्ज्वल उस माखन पर्वत के भीतर

मनुष्यत्व न बहिर्दीप्त वह अंतः संस्कृत, आत्म मनोहर।''

11.3.5 नव मानवतावादी दर्शन

यदि पंत–काव्य की दार्शनिकता को किसी एक शीर्षक के माध्यम से कहा जाए तो वह 'नव मानवतावाद' कहलाएगा। मानवतावादी वे हमेशा रहे, लेकिन बाद की रचनाओं में नए मनुष्य और नए समाज को गढ़ने की छटपटाहट उनमें अधिक दिखाई देती है। अनेक जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों में बंटे मनुष्य को वे एक नए रूप में देखना चाहते हैं–

''भूखंडों में भग्न, विभाजित बर्हिमुखी युग मानव का मन।

स्थापित स्वार्थों से शत खंडित मानव–आत्मा का हत प्रांगण।

देश–खंड से भू–मानव का परिचय देने का क्या क्षण यह

मानवता में देश जाति हों ली, नए युग का सत्याग्रह।''

'गीत विहग' कविता में उन्होंने स्पष्ट रूप में अपनी विचारधारा को रेखांकित किया है–

''मैं नवमानवता का संदेश सुनाता

स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता''

चाहे गांधीवादी विचार सूत्र हों या अरविन्द–दर्शन के चिंतन–वे नयी मानवता की प्रतिष्ठा के लिए समर्पित हैं–

''मैं स्वर्गिक शिखरों का वैभव

हूँ लुटा रहा जन धरणी पर

जिसमें जग–जीवन के प्ररोह

नव–मानवता में उठें निखर!''

उनकी बहुत बाद की 'गीतिकार' शीर्षक कविता में उनका संकेत है कि मानव जीवन के नवनिर्माण में 'ध्वंस' की भूमिका नहीं होगी–

''मैं न ध्वंस करने आया हूँ

था मानव जीवन ही खंडित

उसे पूर्ण, पूर्णतम बनाने

आया हूँ– कर नव संयोजित''

इन सभी अवतरणों से लगता है कि 'मनुष्य' ही पंत जी के चिंतन के केन्द्र में है। वे आज के दुख–दग्ध मानव की स्थिति देखकर स्वयं संतप्त होते हैं और नए मानव की रचना के लिए कृत–संकल्प लगते हैं। उनके नए मानवतावाद में मनुष्य के आर्थिक–सामाजिक विकास के साथ उसके सांस्कृतिक उन्नयन की अपेक्षा भी निहित है। डॉ. किरण गर्ग के शब्दों में– ''मानव जीवन के जिस सांस्कृतिक विकास का स्वप्न पंत जी देखा करते थे, वह उनके विचार से अपने आप में सर्वथा नवीन था और विश्व के ऐतिहासिक विकास के आगामी चरण के रूप में प्रकट होने वाला था।

डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन' ने एक स्थान पर लिखा है– ''कवि पंत के पीछे एक दिव्य संत और पंत के पीछे एक सरस कवि बैठा हुआ है। इसी संयोग ने उनकी सरसता को उच्छृंखल और उनकी साधना को शुष्क होने से बचा लिया है।'' संतत्व अर्थात् चिंतन, सरसता अर्थात् संवेदनशीलता की संश्लिष्टता पंत–काव्य की खास विशेषता है।

11.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि पंत की काव्य–साधना के प्रथम दौर में 'संवेदना' दर्शन पर हावी रही है। उनका परवर्ती काव्य अधिक बौद्धिक और दार्शनिक है। पंत जी के काव्य के संदर्भ में ही रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कभी लिखा था कि सरस्वती की जवानी कविता और बुढ़ापा दर्शन है। पंत जी ने अपनी वृद्धावस्था में निश्चय ही चिंतन–प्रधान रचनाएँ रची है। लेकिन उनके चिंतन, उनकी दार्शनिकता ने उनकी कविता को संवेदनहीन नहीं बनाया है, बल्कि उनकी दार्शनिकता ने उनके काव्य को ठोस और दीर्घजीवी बनाने में बहुत सहायता की है।

11.5 कठिन शब्द

1. आत्मसात्
2. सामयिक
3. मिथ्या
4. लय
5. स्वीकारोक्ति
6. मनोभाव

7. पक्षधरता

8. आश्वस्त

9. वास्तविकता

10. समतामूलक

11. अन्तश्चेतना

12. उच्छृंखल

13. दीर्घजीवी

14. संश्लिष्टता

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिक चेतना सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. सुमित्रानंदन पंत के अरविन्द दर्शन सम्बन्धी विचारों पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. पंत का मार्क्सवादी दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. पंत के मानवतावादी दृष्टिकोण पर आलेख लिखिए।

_____

_____

_____

11.7 पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय– पंतजी का नूतन काव्य और दर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1969
2. विनयकुमार शर्मा– युग कवि पंत की काव्य साधना, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली 1959
3. डॉ. शिवनन्दन प्रसाद– सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, सामयिक प्रकाशन, कानपुर, 1973
4. रमेशचन्द्र शाह– छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973
5. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित– छायावादी कवियों का सौन्दर्यविधान, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1969

.....

सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प

12.0 रूपरेखा
12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प
12.3.1 जीवंत भाषा
12.3.2 सहज छंद–विधान
12.3.3 नव्य अलंकरण
12.3.4 रम्य बिम्ब–विधान
12.3.5 विविध कथन–शैलियाँ
12.4 निष्कर्ष
12.5 कठिन शब्द
12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.7 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे–

– छायावादी काव्यधारा में सुमित्रानंदन पंत का काव्य–शिल्प

– पंत की भाषा, अलंकार, छंद संबंधी विचारों को जान पायेंगे।

– पंत जी ने अपने काव्य में किन कथन–शैलियों का प्रयोग किया है इसे जानेंगे।

12.2 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत कल्पना के सुकोमल कवि के रूप में जाने जाते हैं। छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत अभिव्यंजना के प्रति सर्वाधिक सचेत कवि माने गए हैं। इनकी भाषा सहज छंद–विधान, नव्य अलंकरण, रम्य बिम्ब–विधान और विविध कथन शैलियों से युक्त है। पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में भाषा, छंद आदि पर विचार किय है। इस भूमिका का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ज्ञात होता है कि पंत जी अपनी अभिव्यंजना को संप्रेषणीय और प्रखर बनाने के लिए बहुत सचेत और सक्रिय कवि के रूप में जाने जाते हैं।

12.3 पंत का काव्य शिल्प

पंत जी जहाँ कल्पना के सुकुमार कवि के रूप में जाने जाते हैं, उनका वैचारिक विकास आलोचकों को आकर्षित करता रहा है, वहीं उनका काव्य–शिल्प भी अनूठा और मौलिक है। द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता और सपाट कथन–शैली के विरोध में छायावादियों ने भाषा, छंद, अलंकार आदि सभी स्तरों पर नए–नए प्रयोग किए।छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत अभिव्यंजना के प्रति सर्वाधिक सचेत कवि माने गए हैं। पंत काव्य के शिल्प–विधान को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत मूल्यांकित किया जा सकता है–

12.3.1 जीवंत भाषा

12.3.2 सहज छंद–विधान

12.3.3 नव्य अलंकरण

12.3.4 रम्य बिम्ब–विधान

12.3.5 विविध कथन–शैलियाँ

पंत जी ने 'पल्लव' की विस्तृत भूमिका में भाषा, छंद, कथन–प्रणाली आदि पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इस भूमिका से स्पष्ट होता है कि अपनी अभिव्यंजना को संप्रेषणीय और प्रखर बनाने के लिए वे बहुत सचेत और सक्रिय रहे थे।

12.3.1 जीवंत भाषा

ब्रज भाषा को लेकर पंत जी बहुत आश्वस्त नहीं थे। उन्हें लगता था कि इसमें दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति को व्यक्त करने की क्षमता नहीं थी। खड़ी बोली की कविता–भाषा का जो रूप द्विवेदी युग में था वह भी उन्हें संतोष नहीं दे पा रहा था। अतः उन्होंने भाषा संबंधी अनेक प्रयोग किए और खड़ी बोली को काव्य रचना में सक्षम भाषा

के रूप में स्थापित किया। 'रश्मिबंध' के 'परिदर्शन' में उनका कथन है– ''खड़ी बोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदी युग जिस जागरण का आरंभ था, हमारा युग उसके विकास का सभारंभ था। छायावाद के शिल्प कक्ष में खड़ी बेली ने धीरे–धीरे सौन्दर्य–बोध, पद–मार्दव तथा भाव–गौरव प्राप्त कर प्रथम बार 'काव्योचित भाषा' का सिंहसन ग्रहण किया।''

'पल्लव' की भूमिका से पता चलता है कि शब्दों को लेकर पंत जी कितने सावधान थे। हवा के कई पर्यायवाची शब्द हैं। पंत जी समझाते हैं कि 'अनिल' में कोमल शीतलता है, 'वायु' में निर्मलता है, 'प्रभंजन' में तीव्र गति है, 'पवन' रूकी हुई हवा का बोध करता है और 'समीर' लहराता हुआ चलता है। स्पष्ट है कि इतनी सूक्ष्म समझ रखने वाले कवि के भाषा–प्रयोग सावधानी से प्रेरित होंगे। 'हवा' के पर्यायवाची शब्दों के उनके कुछ प्रयोग इस संदर्भमें दृष्टव्य हैं। जहाँ नायक–नायिका का मिलन क्षण है, वहाँ 'अनिल' का प्रयोग है– 'अनिल की ध्वनि में सलिल की वीचि में'। तेज हवा के लिए 'प्रभंजन' शब्द का प्रयोग है– 'गाता कभी गरजता भीषण। वन वन उपवन पवन प्रभंजन' इसी प्रकार 'समीर' और 'समीर' के प्रयोग दृष्टव्य हैं–

क) शून्य भरता समीर निश्वास

ख) आज जाने कैसी वातास

छोड़ती सौरभ श्लय उच्छवास

पंत जी के शब्द–संसार को देखने पर ज्ञात होता है कि भाषा को लेकर कोई अतिवादी दृष्टिकोण उनका नही था। वे तत्सम प्रधान भाषा भी लिखते थे और एकदम साधारण बोलचाल की भाषा भी उनकी कविताओं में मिलती है। एक ओर 'स्वर्ण', 'अलक्षित', 'गुरूतर', 'संसृति', 'शास्ति', 'साम्राज्य', 'ज्योतित', जैसे तत्सम शब्द उपलब्ध हैं तो दूसरी ओर 'गुदबदे', 'सिड़ी', 'चमड़ी', 'कमठा', 'झांझर' आदि देशज शब्द भी यथा–स्थान मिलते हैं। एक ही कक्ति में भाव और स्थिति के अनुरूप शब्दावली में परिवर्तन उनकी 'बादल', 'परिवर्तन' आदि कविताओं में दिखाई देता है। 'परिवर्तन' कविता में करुणा विगलित क्षणों की भाषा माधुर्य गुण से संश्लिष्ट है–

''अभी तो मुकुट बंधा था माथ

हुए कल ही हल्दी के हाथ,

खुले भी न थे लाज के बोल

खिले भी चुम्बन–शून्य कपोल

हाय, रूक गया वहीं संसार

बना सिंदूर अँगार''

इसी कविता में ध्वंस का चित्रण करने वाली भाषा का स्वरूप इस प्रकार है–

''लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर

छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षः स्थल पर।''

'लोकायतन' आदि परिवर्ती कृतियों में परिवेश और पात्र के अनुरूप भाषा का स्वरूप साधारण बोलचाल का है।

''पारसाल ही तो घर लाया

रंजन नयी वधू कर

दुखिया का सिंदूर लुट गया

उसे देख आँखें आती भर''

'ग्राम्या' में पंत जी ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है। अनेक स्थल पर अंग्रेजी शब्दों के अनुवादसरीखे शब्द उपलब्ध हैं। 'अनुवादित', 'रेखांकित', 'स्वप्निल मुस्कान' आदि 'शब्द' ट्रांसलेटेड, अंडर लाइन्ड, ड्रीमी स्माइल आदि अनुवाद प्रतीत होते हैं।

नाद सौन्दर्य और लाक्षणिकता–पंत काव्य की भाषा की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। वे वर्ण मैत्री के द्वारा 'लयात्मकता' की सृष्टि करने में सफल होते हैं–

1) मृदु–मंद मंथर–मंथर

2) झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के

छमछम छम गिरती बूँदें तरुओं से छनके।

लाक्षणिक भाषा प्रयोगों से पूरा पंत काव्य भरा पड़ा है। जहाँ मुख्य अर्थ के ग्रहण में बाधा होती हैऔर रूढ़ि अथवा प्रयोजन की सहायता से पाठक अर्थ तक पहुँचता है, वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति मानी जाती है। उनकी प्रथम प्रसिद्ध कविता 'प्रथम रश्मि' के प्रारम्भ में ही लक्षणा का सहारा लेना पड़ता है–

''सोयी थी तू स्वप्न नीड़ में

पंखों के सुख में छिपकर

झूम रहे थे, घूम द्वार पर

प्रहरी से जुगनू नाना''

बादल, परिवर्तन, नौका विहार आदि कविताओं की तो सारी शक्ति ही लक्षणा पर निर्भर है। लेकिन पंत की यह विशेषता है कि उनके लाक्षणिक प्रयोग दुरुह और क्लिष्ट नहीं है। थोड़े से प्रयास के बाद पाठक उनके अभीष्ट अर्थ तक पहुँच जाता है। उदाहरण के लिए चारों ओर व्याप्त शोषण, लूट और भ्रष्टाचार की प्रतीति 'परिवर्तन' कविता की इन पंक्तियों में उलझी हुई या अस्पष्ट नहीं है–

''सकल रोओं से हाथ पसार

लूटता इधर लोभ गृह–द्वार

उधर वामन डग स्वेच्छाचार

नापती जगती का विस्तार''

इस तरह स्पष्ट है कि पंत जी जहाँ भाषा को एक नया रूप देने के लिए प्रयास कर रहे थे, वहीं संप्रेषण की समस्या से अनजान नहीं थे। 'ग्राम्या', 'युगवाणी' आदि में लक्षणा की सहायता उन्होंने कम ली है, लेकिन फिर बाद की कृतियों में लक्षणा ही उनकी भाषा की प्रमुख शब्द–शक्ति बनी हुई है। लोकोक्तियों और मुहावरोंमें भी लक्षणा विद्यमान होती है। इस रूप में भी लक्षणा के कई उदाहरण पंत–काव्य में उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ–

क) आठ आँसू रोते निरूपाय

ख) साँप लोटते फटती छाती

ग) कैसे उलझा हूँ लोचन

पंत काव्य के प्रथम दौर में जहाँ भाषा के स्तर पर कोमल कांत पदावली और चित्रमयता है, वहीं दूसरे दौर में भाषा जीवन–यथार्थ के बहुत निकट है। लेकिन तीसरे दौर के स्वर्ण–काव्य की भाषा, जटिल, दुरूह और प्रतीकात्मक है। अतः सामान्य पाठक को अर्थ–ग्रहण में कठिनाई होती है। 'कला और बूढ़ा चाँद' जैसी अंतिम दौर की कविताओं में भाषा बोलती कम है, अर्थ की व्यंजना अधिक होती है। कवि की प्रतिज्ञा है–

''मैं शब्दों की

इकाइयों को रौंद कर

संकेतों में

प्रतीकों में बोलूँगा

उनके पंखों को/असीम के पार फैलाऊँगा।''

लेकिन प्रतीकों–संकेतों की उपस्थिति के बावजूद इस दौर की कविताओं में अस्पष्टता या उलझाव नहीं है। कुछ कविताओं में मोर, बिल्ली और कौए के माध्यम से आज की विसंगतियों पर अच्छे व्यंग्य किए गए हैं।

12.3.2 सहज छंद–विधान

'रश्मि बंध' की भूमिका 'परिदर्शन' में पंत जी का कथन है– ''छायावादी कवियों ने छंदों में मात्राओं से अधिक महत्व उसके प्रसार तथा स्वर–संगति को दिया। उन्होंने कई प्रचलित छंदों को अपनाते हुए भी, उनके पिटे–पिटाए यति–गति में बंधे रूप को स्वीकार न कर उनमें प्रसार की दृष्टि से नए प्रयोग कर दिखाए।'' छंदों के विधान में यह शिथिलता एक तरह से कविता की बंधनों से मुक्ति का प्रारंभ था–

''खुल गए छंद के बंध

प्रांश के रजत पाष

अब गीत मुक्त

और युगवाणी बहती अयास।''

'प्रथम रश्मि' शीर्षक कविता में पंत जी ने 'कुकुभ' छंद के अर्धसम रूप का प्रयोग किया है। 'ग्रंथि' में 'पीयूष वर्ष' छंद का उपयोग है। 'पल्लव' में 'शृंगार' और 'वीर' छंदों की प्रमुखता है। 'गुंजन' में उन्होंने प्राचीन छंद 'रूपमाला' का प्रयोग पहली बार किया है। कई स्थलों पर परम्परागत छंदों को किंचित् संशोधन के साथ रखा गया है। उदाहरण के लिए 'पर्वत प्रदेश' में 'पावस' की निम्नलिखित पंक्तियों में 'पद्धरि' का प्रयोग है–

''मेखलाकार पर्वत अपार

अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़

अवलोक रहा है बार–बार

नीचे जल में निज महाकार''

परम्परागत छंदों को लेकर पंत जी ने निरन्तर प्रयोग किए हैं। 'परिवर्तन' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रथम दो चरण 'गोपी' छंद के हैं और अंतिम दो चरण 'शृंगार' छंद में रचित हैं–

''खोलता उधर जन्म लोचन

मूँदती उधर मृत्यु क्षण–क्षण

अभी उत्सव औ हास–हुलास

भी अवसाद, अश्रु उच्छवास।''

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि उनका छंद–विधान शास्त्र की रूढ़ि से मुक्त और सहज है। 'कला और बूढ़ा चाँद' में मुक्त छंद पर उनका अधिकार प्रमाणित होता है। डॉ. श्याम गुप्त ने उनके छंद विधान की उपलब्धि पर लिखा है– ''कवि ने छंदों को अपनी अँगुलियों पर नचाने के पूर्व अथक साधना की। इसी साधना का यह परिणाम है कि छंद उनके सामने हाथ जोड़े दिखायी देते हैं, लगता है छंद कवि के इशारा करने के पूर्व ही अभीष्ट कार्य संपादित कर उनका विश्वास पात्र बनना चाहते हैं।

12.3.3 नव्य अलंकरण

पंत जी के शब्दों में– ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं हैं वरन भाव अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार है।'' इस कथन से स्पष्ट है कि पंत जी रीतिकालीन मानसिकता से अलग हटकर अलंकार का समावेश करते हैं। अलंकार उनके लिए 'साध्य' न होकर साधन हैं। अलंकरण, पंत काव्य में दो रूप में उपलब्ध हैं। एक ओर रूपक,उपमान, उत्प्रेक्षा आदि समतामूलक अलंकारों के प्रयोग हैं, जिनमें उपमान परम्परागत और नवीन दोनों प्रकार के हैं दूसरी ओर एकदम नए विशेषण–विपर्यय, मानवीकरण आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। उपमा, रूपक पंत जी को बहुत प्रिय है। 'परिवर्तन' में उन्होंने एक प्रभावशाली सांगरूपक की योजना की है–

''अहे वासुकि सहस्त्र–फन

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर

छोड़ रहे हैं जगती के वक्षः स्थल पर

.....

अखिल विश्व की विवर

वक्र कुंडल

दिग् मंडल''

'छाया', 'बादल' आदि कविताओं में उपमाओं की भरमार सी है। लेकिन वे पिष्टपेषित नहीं होकर नवी और साभिप्राय हैं। बादल के मधुर–भयावह रूपों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ–तहाँ उपयुक्त अप्रस्तुत प्रयुक्त हैं। भयानक रूप की प्रस्तुति इस प्रकार हुई है–

''कभी अचानक भूतों का सा

पकटा विकटा महा आकार''

जहाँ उनका सौम्य रूप है, वहाँ परियों के बच्चों को अप्रस्तुत बनाया गया है–

''फिर परियों के बच्चों से हम

सुगम सीप के पंख पसार''

साहचर्य मूलक या शब्दालंकारों के प्रयोग भी पंतकाव्य में कम नहीं है। लेकिन चमत्कार पैदा करने के बजाय शब्दमैत्री के द्वारा सौन्दर्य उत्पन्न कर देना पंत जी को अधिक प्रिय है। इसलिए वीप्सा, पुनरूक्ति प्रकाश, अनुप्रास आदि उनके काव्य में अत्यंत सहज भाव से आए हैं। 'वह मधुर मधुमास था', 'सुधामय सांसों में उपचार', 'मृदु–मृदु स्वप्नों से, मृदु मंद मंद मंथर मंथर' आदि उद्धरण उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं। 'यमक' का प्रयोग 'ग्रंथि' में मिलता है–

तरणि के ही संग तरल तरंग में

तरणि डूबी थी हमारी ताल में

पंत जी ने अनेक ऐसे उपमानों का प्रयोग किया है जो सूक्ष्म हैं लेकिन अर्थग्रहण में बाधक नहीं होते। जैसे– विधुर उर के से मृदु उदगार, आकांक्षा का उच्छावसित वेग, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार' आदि 'मानवीकरण' अलंकार का पंत ने सर्वाधिक प्रयोग किया है। इनकी प्रसिद्ध कविता 'संध्या' विशेष रूप से दृष्टव्य है–

कहो, तुम रूपसि कौन

व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप

यहाँ संध्या का मानवीकरण है। विशेषण विपर्यय भी जहाँ–तहाँ मिलता है– 'आह! वह मेरा गीला गान'। इन नए–नए अलंकारों की उपस्थिति में भी पंत की कविता पारदर्शी और ग्राह्य बनी रहती है, यह बड़ी बात है।

12.3.4 रम्य बिम्ब–विधान

अर्थ–ग्रहण के साथ–साथ बिम्ब–ग्रहण कराना भी अच्छे कवि का गुण माना गया है। पंत जी सदैव बिम्बों–विशेषतः प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से अपना अभिप्राय व्यक्त करते रहे हैं। उनकी कविता में चाक्षुष बिम्बों की प्रधानता है, लेकिन श्रव्य, स्पृश्य आदि बिम्बों का अभाव नहीं है। प्राकृतिक तत्वों में प्रकाश, जल और वायु से संबंधित बिम्ब बराबर ध्यान आकर्षित करते हैं। कुछ उदाहरण प्रमाण–स्वरूप देख सकते हैं –

1) **दूध धुली–ऊनी भापों की**

किरणों की भेड़ें हिम चरती (चाक्षुष बिम्ब, प्रकाश बिम्ब)

2) बुलबुलों का व्याकुल संसार (जल बिम्ब)

3) वह छवि की छुई मुई सी

मृदु मधुर लाज से मर–मर (स्पर्श बिम्ब)

'नौका विहार' में एक घरेलू बिम्ब बहुत मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है–

माँ के उर पर शिशु सा–समीप

सोया धारा में एक दीप

पंत–काव्य में जहाँ मनोहर और मार्मिक बिम्बों की योजना हुई है, वहीं वस्तुस्थिति की कठोरता को दिखाने वाले भयावह बिम्बों की भी कमी नहीं है। 'परिवर्तन' कविता का एक बिम्ब दर्शनीय है–

'तुम्हीं स्वेद–सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल

दलमल देते, वर्षोंपल बन, वांछित कृषिफल।'

हथेली पर मुख टिकाए युवती का बिम्ब पंत को बहुत प्रिय है। इसका उन्होंने कई कविताओं में प्रयोग किया है। जैसे 'नौका विहार' में 'शशि मुख से दीपित करतल' है और एक अन्य कविता में शारदा की भंगिमा कुछ इसी प्रकार की है–

मृदु करतल पर शशि मुख घर

नीरव अनिमिष एकाकिनि

ये सभी बिम्ब कवि के अभिव्यंजना–कौशल का प्रमाण देते हैं।

12.3.5 विधि कथन–शैलियाँ

पंत–काव्य की कथन–पद्धतियाँ वैविध्यपूर्ण हैं। पंत जी जिस कुशलता से लघु कविता लिखते हैं, उतने ही कौशल से लम्बी कविता की रचना करते हैं। यदि मुक्तक काव्य पर उनकी पकड़ है तो 'लोकायतन' और 'सत्यकाम' में वे प्रबंध रचना में पटुता का प्रमाण देते हैं। उनकी 'ताज', 'बापू', 'स्वप्न–कल्पना' आदि कविताएँ छोटे–छोटे आकार की हैं और अपने आप में पूर्ण हैं। 'परिवर्तन' लम्बी कविता है। डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसाार ''यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।' लंबी कविता में कोई केन्द्रीय स्थिति होती है, जिसे बिम्बों और विचारों की लड़ी बनाकर प्रस्तुत करते चलते हैं। 'परिवर्तन' में मानव जीवन में सुख सरसों के बराबर और दुख सुमेरू पर्वत के बराबर होने का केन्द्रीय भाव बहुत कुशलता से व्यक्त हुआ है। 'ग्रंथि' में सूक्ष्म कथा तत्व के सहारे प्रेमानुभूति का अंकन है और 'लोकायतन' में प्रबंध रचना को नया रूप देने का प्रयास है। लेकिन न तो कथ्य और न शिल्प की दृष्टि से पंत जी के महाकाव्य कुछ नया रच पाए हैं। 'रश्मि' में चिंतन का योग है। यहाँ आकुलता का स्थान विश्वास ने ले लिया है। यहाँ चिंतन की दिशा सुनिश्चित होती है। वे जग के दुःख–दर्द से जुड़ती दिखाई पड़ती हैं–

कह दे माँ अब क्या देखूँ

देखूँ खिलती कलियाँ या

प्यासे सूखे अधरों को

तेरी चिर यौवन सुषमा

जा जर्जर जीवन देखूँ?

शैलियाँ कोई सी भी हों, पंत जी ने उनमें काव्यत्व की रक्षा भली भाँति की है।

12.4 निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भाषा, छंद, अलंकार, बिम्ब, कथन पद्धति आदि सभी स्तरों पर पंत जी का काव्य श्रेष्ठ है। उन्होंने शिल्प पक्ष पर बहुत श्रम किया है। इसलिए भाषा प्रयोगों को लेकर वहाँ सावधानी मिलती है और अर्थ–सौन्दर्य बढ़ता गया है। छंद–विधान को नया और आकर्षक बनाने के लिए सावधानी मिलती है औरअर्थ–सौन्दर्य बढ़ता गया है। छंद–विधान को नया और आकर्षक बनाने के लिए वे सतत् प्रयास करते रहे। उनकी कविता जितनी वैचारिक–संवेदनात्मक रूप से उल्लेखनीय है, उतनी ही उसकी प्रस्तुति भी आकर्षक है। प्राकृतिक अप्रस्तुतों औरबिम्बों की छटा पूरे पंत–काव्य में हैं। अपनी लम्बी काव्य यात्रा में पंत जी निरन्तर प्रयोगशील रहे हैं। भाषा, छंद आदि के क्षेत्र में नए प्रयोग करते हुए अपनी अभिव्यक्ति को नया रूप देने को वे निरंतर प्रयासरत रहे। मुक्तक रचना, गीति–रचना से लेकर प्रबंध–शिल्प तक में वे अपनी निपुणता दिखाते हैं। समग्रतः उनका काव्य–शिल्प बहु प्रौढ़ और प्रभावशाली है।

12.5 कठिन शब्द

1. सुनिश्चित
2. आकुलता
3. निरंतर
4. अभिव्यक्ति
5. वैचारिक
6. अभिप्राय
7. आकांक्षा
8. अलक्षित
9. साहचर्य
10. पिष्टपेषित

11. शब्दमैत्री

12. अभीष्ट

13. शिथिलता

14. संप्रेषण

15. दुरूह

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. सुमित्रानंदन पंत के काव्य–शिल्प पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

प्र०2. पंत की विविध कथन शैलियों पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०3. पंत की अभिव्यंजना शैली को विवेचित कीजिए।

_____

_____

_____

प्र०4. पंत की लक्षणा–शैली पर टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

12.7 पठनीय पुस्तकें

1. प्रतिभा कृष्णबल – छायावाद का काव्य–शिल्प, राधाकरण प्रकाशन, दिल्ली, 1962
2. नामवर सिंह– छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
3. डॉ. नगेन्द्र– सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1953
4. डॉ. नगेन्द्र– हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1982
5. विनयकुमार शर्मा– युग कवि पंत की काव्य साधना, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 1959
6. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित– छायावादी कवियों का सौन्दर्यविधान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1969

.....